हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज

संयोगिता

(ऐतिहासिक नाटक)

लेखक

मायादत्त नैथानी

सहकारी सम्पादक, बाम्बे सेंटिनल

प्रकाशक

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

कुछ सम्मतियाँ

श्री मायादत्तजीके इस नाटकको पढनेसे पता चलता है कि उनकी प्रतिभामे विकासके बीज छिपे हैं। स्व० प० गिरिजादत्तजी नैथानी-सरीखे ओजस्वी लेखक और सम्पादकके पुत्र होकर उनका प्रतिभावान न होना आश्चर्यकी बात होती।

—डा० **पीताम्बरदत्त बड्थ्वाल**
एम्० ए० एल एल० बी०, डी० लिट्

सयोगिता' ऐतिहासिक घटनाके आधारपर लिखी गई है। पात्र थोडे हैं किन्तु व्यक्तित्वसे भरे हैं। चरित्र-चित्रणमे लेखककी प्रतिभाका आभास मिलता है। 'सयोगिता' मे सजीवता, आदर्शवादिता तथा रोचकताका बहुत सुन्दर सामञ्जस्य किया गया है। भाषा परिमार्जित, सुन्दर तथा उपयुक्त है।

—**चन्द्रावती लखनपाल** एम० ए०

" मैंने श्री मायादत्त नैथानी लिखित 'सयोगिता' को पढा। इन दिनो मेरे पास समयका अभाव था,—इस प्रकारके कथानकको पढनेके लिए समय निकालना कठिन था, परन्तु नैथानीजीका आग्रह शीघ्रता करनेका था। उन्होने कहा पन्ने पलट लीजिए, लेकिन मैंने जैसे ही एक दो पृष्ठ पढे मुझसे न छोडा गया। बडी रुचिसे उसे आद्योपात पढा। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि नैथानीजीने सयोगिताकी कथाको एक सुन्दर लघु नाटकका रूप दिया है। नाटकका कार्य मनोरजनके साथ किसी आदर्शको सामने रखना होता है, सो दोनो बाते इसमे मिल जाती हैं। कथा तो पुरानी है परन्तु उसके विन्यासका ढग लेखकका अपना

है। नाटकके पात्र ऐतिहासिक हैं, परन्तु उनके आचार-विचार आदि लेखकने सर्वकालीन कर दिये हैं।

भाषाकी दृष्टिसे रचना बहुत ही अच्छी बन पड़ी है। उसमें स्वाभाविकता है, सरलता है और है सरसता। नाटककी भाषामें और क्या चाहिए? इन थोड़ेसे पृष्ठोंमें कई वाक्य ऐसे हैं जो लेखकके गहन मानवीय एवं प्राकृतिक पर्यवेक्षणका प्रमाण देते हैं। अनेक सर्वकालीन एवं सार्वभौम सत्यतायें हैं जो हृदयको गुदगुदाये बिना नहीं रह सकतीं।

संक्षेपमें, रचना सब प्रकार उपादेय है और उसके लिए मैं नैथानीजीको बधाई देता हूँ।

—**महेन्द्रप्रताप शास्त्री** एम० ए०,
एम० ओ० एल०

स्वर्गीया भतीजी शान्तिदेवी खंडूड़ीकी

पुण्य-स्मृतिमें

कृतज्ञता-प्रकाश

सिनेमा-जगतके विख्यात सवाद-लेखक मेरे मित्र श्रीयुत जमुनास्वरूप काश्यपने इस नाटकके लिए गाने लिख देनेकी कृपा की है। इसके लिए मैं बहुत ही कृतज्ञ हूँ।

—लेखक

नाटक-पात्र

पुरुष

पृथ्वीराज	दिल्ली-नरेश
चन्द बरदायी	राजकवि
भीमसिंह	एक सेनापति
विजयसिंह	सेनाका एक अधिकारी
अजयसिंह	दिल्लीके सेनापति
वीरसिंह	सैनिक
शहाबुद्दीन गोरी	गजनीका बादशाह
जयचन्द	कन्नौज नरेश

स्त्री

संयोगिता	जयचन्दकी कन्या
सुनन्दा	भीमसिंहकी बहिन
उर्मिला	अजयसिंहकी कन्या
कंचना	उर्मिलाकी दासी
रानी	जयचन्दकी पत्नी

संयोगिता
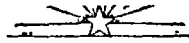
पहला अंक

स्थान—दिल्लीके राजमहलका एक कमरा

समय—सबेरा

[खिड़कीके पास पृथ्वीराज और कुछ हटकर चन्द बरदाई खड़े हैं।]

पृथ्वी०—इस विषयमे सामन्तोकी क्या राय है कविवर ?

चन्द०—उन सबकी जुदी जुदी राय है महाराज !

पृथ्वी०—परन्तु वे इसे उचित समझते है या अनुचित ?

चन्द०—इसकी आप चिन्ता न करे महाराज, आपकी आज्ञाका ही उन्हे पालन करना होगा।

पृथ्वी०—परन्तु सामन्तोकी रायके विपरीत तो मुझे नही जाना चाहिए। नही तो, कल लोग कहेंगे कि मैने अपने स्वार्थ और सुखके लिए ही अपनी निरीह प्रजाका रक्त बहाया।

चन्द०—पर, यह आपके स्वार्थ और सुखका ही तो प्रश्न नहीं है ! आपकी स्वर्ण-मूर्ति बनाकर उसे प्रवेशद्वारपर खड़ा कर देना केवल आपका ही व्यक्तिगत अपमान नहीं है, यह तो देशका अपमान है जिसके कि आप प्रतिनिधि है और इसी राष्ट्रीय अपमानका बदला लेनेके लिए ही आज राज्यके प्रत्येक व्यक्तिका युद्धके मैदानमे आह्वान किया जा रहा है। व्यक्तिगत नहीं, राष्ट्रीय स्वाभिमानकी रक्षाके लिए यह युद्ध होगा महाराज !

पृथ्वी०—परन्तु, लोग तो यही कहेगे न कि इसमे मेरा स्वार्थ था, सयोगिताको पानेके लिए ही मैंने कन्नौज-राज्यसे युद्ध किया ?

चन्द०—कहने दीजिए महाराज ! यदि प्रत्येक व्यक्तिके कहनेपर ध्यान दिया जाय तो ससारमे कोई काम किया ही नही जा सकता। बुरे लोग तो अच्छाईमे भी बुराई देखा करते है। बुराई देखना ही जिनका स्वभाव हो उन्हे कैसे समझाया जाय ?

पृथ्वी०—सुना है कि सयोगिता किसी गुप्त स्थानमे बन्दी है।

चन्द०—इसकी आप चिन्ता न करे महाराज ! इसपर फिर विचार किया जायगा। परन्तु अभी,—इसी घड़ी, आप सभी सैनिकोको कन्नौजकी ओर प्रस्थान करनेकी आज्ञा दे दीजिए।

पृथ्वी०—अभी ?

चन्द०—हाँ, अभी। राजकुमारीके स्वयवरका दिन बिल्कुल समीप है, उस दिन हमारा वहाँ उपस्थित रहना बहुत जरूरी है।

(पृथ्वीराज कुछ सोचने लगते हैं।)

चन्द०—उस रोज हम वेश बदलकर कन्नौजमे रहेगे और—

पृथ्वी०—पहरेदार !

[पहरेदारका प्रवेश]

पृथ्वी०—जाओ, भयसूचक भेरी बजाओ, और सभी सामन्तोंको दरबारमे एकत्र होनेको कहो। सेनापति अजयसिंह और उपसेनापति भीमसिंहको भी हाजिर करो।

पहरे०—जो आज्ञा।

(प्रस्थान)

पृथ्वी०—मेरा अपमान करनेके लिए मेरी मूर्ति बनाकर खड़ी करना,—कैसा विचित्र है!—(मुस्कराते हैं।)

चन्द०—इसमे कन्नौज-नरेशका एक खास मतलब है महाराज!

पृथ्वी०—क्या?

चन्द०—वे संसारको यह दिखाना चाहते हैं कि दिल्लीश्वर मेरे सामने ऐसे ही निर्जीव है जैसी कि यह मूर्ति। और जैसे कि वे उस स्वर्ण-मूर्तिको बना और बिगाड़ सकते हैं वैसे ही दिल्लीश्वरको भी।

[नेपथ्यमें दुन्दुभिकी ध्वनि होती है और इसके बाद कोलाहल। सेनापति अजयसिंह और भीमसिंहका प्रवेश। दोनों सामरिक रीतिसे पृथ्वीराजका अभिवादन करते हैं।]

पृथ्वी०—सामन्तवर, मैंने युद्धका ही निश्चय किया है। आप शीघ्र ही सैनिकोंको कूचकी आज्ञा दे दीजिए। दो घड़ी बाद सेनायें प्रस्थान कर दें।

अजय०—जो आज्ञा महाराज!

पृथ्वी०—कविवर, चलिए सामन्तोंको भी घोषणा सुना दें।

(पृथ्वीराज और चन्द बरदाईका प्रस्थान)

भीम०—मैं दिल्लीश्वरकी इस उतावलीका तात्पर्य नहीं समझ सका सामन्तवर!

अजय०—(हँसते हुए) सो तो तब समझ सकते भीम, जब कि तुम भी अपनेको किसी सुन्दरीके प्रेम-पाशमें बंदी पाते!

भीम०—सेनापति, मैं—

[उर्मिलाका प्रवेश]

उर्मिला—पिताजी !

अजय०—बेटी !

उर्मिला—महाराजसे क्या बात हुई पिताजी ?

अजय०—बेटी, अब कन्नौजसे युद्ध छिड़ेगा। उसीके सम्बन्धमे बात हुई थी। मै सेनाओंको तय्यार होनेकी आज्ञा देने जाता हूँ, थोड़ी देर बाद आऊँगा। तुम यहीं रहो। भीम, तुम भी यहीं रहो।

भीम०—अच्छी बात है।

(अजयसिंह जाते हैं।)

उर्मिला—तो युद्ध छिड़ ही गया सामन्तवर !

भीम०—हाँ, छिड़ा ही समझो उर्मिला !

[उर्मिला कुछ सोचती है।]

भीम०—क्यों, क्या युद्धसे घबराती हो उर्मिला ?

उर्मिला०—नही। परन्तु, मुझे अब पिताजीकी चिंता सताती है। वे वृद्ध हो गये है, युद्धके योग्य नहीं रहे।

भीम०—यह तो हमारा गौरव है उर्मिला, कि आबाल-वृद्ध सभी क्षत्रिय देशकी कीर्ति-रक्षाके लिए सदैव मर मिटनेको तय्यार है। उनके लिए कभी चिंता नहीं करनी चाहिए जो कि अपनी जातिके लिए, अपने धर्मके लिए, अपने जीवनकी आहुति देनेको तय्यार रहते है। वे तो ससारके लिए आदर्श हैं, उर्मिला ! चिंता तो उन लोगोंके लिए करनी चाहिए जिनमे स्वाभिमान नहीं रहा हो, जो अपने कर्तव्यसे विमुख हों।

उर्मिला—(अवरुद्ध कंठसे) सामन्तवर, इस बातका दुख नहीं है

कि पिताजी युद्धमें जा रहे हैं। दुख है केवल इस बातका कि मै युद्ध-भूमिमे उनके समीप न रह सकूँगी।

भीम०—परन्तु, मैं युद्ध-भूमिमे सदैव तुम्हारे पिताजीके ही समीप रहूँगा जो। मै तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ कि मै अपने जीते जी तुम्हारे पितापर शस्त्रका एक भी आघात न होने दूँगा। उन्होंने मुझे भी तो पुत्रकी तरह प्यार किया है। जब मैं असहाय था, तब उन्होंने ही तो आश्रय देकर मेरी रक्षा की है। नहीं तो मै—

उर्मिला—सामन्तवर!—

दूसरा दृश्य

स्थान—कन्नौजके राज-भवनका एक कमरा

समय—सन्ध्या

[रानी और संयोगिता]

रानी—उस समयकी भी कल्पना कर बेटी, जब कि तू नादान बच्ची थी। तेरे पिताजीने प्रेम-जलसे सींच सींचकर तुझे इतना बड़ा किया, और आज तू उन्हींकी अवहेलना कर रही है?

[संयोगिता करुण दृष्टिसे आकाशकी ओर देखती है।]

रानी—जब तू बीमार होती थी तो वे तुझे निरन्तर छातीसे ही चिपकाये रहते थे, कहते थे 'कोई भी शक्ति मेरी बेटीको मुझसे अलग नही कर सकेगी।' निस्तब्ध रात्रिकी शून्य घड़ियोंमें राज-मंदिरमे जाकर प्रार्थना करते थे 'प्रभो, मेरी इस छोटी-सी बालिकाको मेरे ही पास रहने दो!' आँसुओंसे भगवानकी मूर्तिके चरणोंको धोकर कहते थे 'भगवन्, मेरी बालिकाको मुझसे न छीनो!' गगनके नीरव तारे झाँक झाँककर महाराजके करुणाभरे शब्दोंको महाशून्यमे विलीन होते

देखा करते थे । परन्तु, आज वे सब बाते बीत गईं, आँसू सूख गये हैं और वे तारे भी अन्तर्धान हो गये !

संयो०—मुझे क्षमा करो माँ !

रानी—मैं जानती हूँ इसे तू 'प्रेम' समझ बैठी है, परन्तु वास्तवमें यह प्रेम नहीं, यह कुछ और ही है । प्रेम मनुष्यको अन्धा कभी नहीं बनाता, उसके विवेकको कभी नष्ट नहीं करता । प्रेम तो स्वर्गीय प्रकाशकी एक किरण है जो मनुष्यके जीवन-पथको आलोकित करती है, उसे चरम सत्यकी ओर ले जाती है ।

संयो०—अवश्य ही मैं अंधकारमे भटक रही हूँ माँ ! परन्तु,—

रानी—इतनी दुर्बल न बन बेटी ! इच्छाओंके ऊपर अधिकार करना सीख, मानव-जीवनकी सार्थकता इसीमे है कि वह अपने ऊपर अधिकार करना सीखे ।

संयो०—परन्तु सो कैसे, बताओ माँ ?

रानी—बुद्धिसे,—विवेकसे, और कैसे बताऊँ बेटी ?

[संयोगिता कुछ सोचती है ।]

रानी—ज़रा सोच तो बेटी, कि तू क्या कर रही है ? अपने माता, पिता और सारे कन्नौज-राज्यका तू नाश कर देना चाहती है; और वह केवल अपने लिए, अपने स्वार्थके लिए, अपनी प्रसन्नताके लिए !

संयो०—माँ, मैं अवश्य अपने ऊपर विजय प्राप्त करनेका प्रयत्न करूँगी, पर—

रानी—संयममे ही वास्तविक सुख मिलता है बेटी, इसे अच्छी तरह समझ ले । तो अच्छा बेटी, मैं जरा तेरे पिताजीसे मिल आऊँ ।

(रानीका प्रस्थान)

[सुनन्दाका प्रवेश]

सुनन्दा—आज उदास क्यो हो राजकुमारी ?

संयो०—मैं सोचती हूँ बहिन कि—

सुनन्दा—क्या सोचती हो ?

सयो०—कि इस ससारमे कोई प्राणी सुखी भी होगा ?

सुनन्दा—सुखी तो वही होगे राजकुमारी, जो कि मायावी इच्छाओके जालमें न फँसे हो।

सयो०—पर इच्छाओके जालमे न फँसनेकी भी तो एक इच्छा ही है बहिन !

सुनन्दा—परतु इच्छायें भी तो दो प्रकारकी होती हैं राजकुमारी,—अच्छी और बुरी। अच्छी इच्छाएँ मनुष्यके जीवनका विकास करती हैं और बुरी इच्छाएँ या वासनाएँ उसका पतन। 'मायावी इच्छाओ से मेरा मतलब उन्ही वासनाओसे है जो कि उसके हृदयमे कभी तृप्त न होनेवाली तृष्णाको उकसा कर उसे अशात बना देती है और प्यासे मृगकी तरह उसे इस विकट मरु-भूमिमें तब तक तड़पाती रहती है जब तक कि उसका विनाश नहीं हो जाता।

सयो०—परन्तु, अच्छी और बुरी इच्छाओकी कसौटी क्या है ?

सुनन्दा—जो जीवनको उत्थानकी ओर ले जाती हैं अच्छी हैं और जो पतनकी ओर वे बुरी। जिस कार्यके करनेसे जीवनको चेतना मिलती है और आत्माको आनन्द, उस कार्यको हम अच्छा कहते है और उसकी इच्छाको अच्छी। नीतिशास्त्रोमे उसे ही कर्त्तव्य माना है।

संयो०—(व्याकुल दृष्टिसे सुनन्दाकी ओर देखते हुए) बहिन,

अंधकारसे ढके हुए आकाशमे काले बादल मँडरा रहे हैं। मेरे भाग्य-नक्षत्रके प्रकाशको उन्होंने छिपा लिया है। मैं भयानक अन्धकारमे मार्ग टटोल रही हूँ, परन्तु वह नहीं मिलता। बहिन, क्या मैं इस महाशून्यमे यों ही नष्ट हो जाऊँगी ?

सुनन्दा—मे तो समझती हूँ राजकुमारी, कि तुम राजनीतिकी सतरजकी एक गोट बन गई हो।

सयो०—(ठढी सास खींचकर) बाहरसे ये महल कितने वैभवशाली, सुन्दर और शात मालूम पड़ते हैं। लोग समझते होंगे कि महलोंके भीतर रहनेवाले बड़े सुखी और सन्तुष्ट है। परन्तु वे क्या जाने कि गम्भीर और शान्त दिखाई देनेवाले इन प्रासादोके भीतर राजनीतिके अमानुषिक खेल खेले जाते है! आह! यदि महत्त्वाकाक्षी लोग यह समझ सके कि वैभवके पीछे अशान्ति, और सम्मानके पीछे दुख ही छिपा रहता है! सुखके बीचमे रहते हुए भी मै दुःखी हूँ, सब कुछ होते हुए भी असन्तुष्ट हूँ, राजकुमारी होनेपर भी बदिनी हूँ, निर्दोष होनेपर भी आज मेरे ही कारण कन्नौज राज्यमे अशान्तिकी आग धधक उठी है।

सुनन्दा—इसमे तुम्हारा कोई दोष नही राजकुमारी! कन्नौज राज्यमें जो आग प्रज्वलित हो उठी है उसके कारण हैं महाराज, तुम नहीं। कन्नौजपतिका दिल्लीपति पृथ्वीराजसे व्यक्तिगत वैर है, इसी कारण वे तुम्हे उनसे विवाह नहीं करने देते। दिल्लीश्वर कन्नौज राज्यके शत्रु नहीं हैं, न उन्होने कभी कन्नौज राज्यपर आक्रमण ही किया है और न कभी इसकी स्वतन्त्रताको नष्ट करनेका प्रयत्न।

सयो०—यह ठीक है, परन्तु अब तो अशान्तिकी अग्नि प्रज्वलित

हो ही गई है, वह चाहे कैसे भी हुई हो, बहिन, उसे तो अब मैं अपने बलिदानसे,—अपने रक्तसे,—ही शान्त कर सकती हूँ।—यही ठीक है, मेरे जीवनके साथ इस अशान्तिका भी अन्त हो जाय।

सुनन्दा—परन्तु तुमने यह भी विचार किया राजकुमारी, कि आत्म-बलिदान करके तुम महाराज पृथ्वीराजके हृदय-लोकमें कितनी भयकर दु खाग्नि प्रज्वलित कर दोगी! स्मरण रक्खो, आजकल भारतवर्षपर विदेशियोके आक्रमण हो रहे है। दिल्लीश्वरके ही कारण आज हमारे देशकी कीर्ति और स्वतन्त्रता रक्षित है। उनका जीवन आज भारतवर्षके लिए बहुमूल्य है। यदि दिल्लीश्वरका कुछ अनिष्ट हुआ, तो याद रक्खो, उनके साथ हमारी स्वतन्त्रता और हमारा धर्म भी नष्ट हो जायगा, और इसका उत्तरदायित्व होगा राजकुमारी, केवल तुम्हारे ऊपर!

सयो०—परन्तु मै क्या करूँ?

सुनन्दा—दिल्लीश्वरकी अर्धाङ्गिनी बनकर तुम उन्हे कर्तव्य-मार्गकी ओर प्रेरित करो।

सयो०—यह नहीं हो सकता बहिन, यह असम्भव है। पिताजीने मुझे जीवन दिया है, इसलिए मेरा कर्तव्य है कि उनकी आज्ञाका पालन करूँ। मै उन्हे नाराज न कर सकूँगी।

सुनन्दा—(मुस्कराते हुए) तुम्हारे हृदयमे वैसा ही मोह उत्पन्न हो रहा है जैसा कि अर्जुनके हृदयमें कुरु-क्षेत्रमे अपने भाइयोको देखकर हुआ था। परन्तु राजकुमारी, क्या तुम भगवान्‌के उन अमर वचनोको भूल गई हो जिनमे उन्होंने कर्तव्यको मानव-जीवनका चरम आदर्श बताया था? हिन्दुओंके जीवनका आदर्श है कर्तव्य-पालन और

भीम०—(हँसता हुआ) और वह तुम्हारे हृदयमें एक आन्दोलन मचाकर चली गई ?

विजय०—नहीं, वह भी खड़ी खड़ी चचल लहरोंकी ओर देखने लगी। उसके हाथमे जल-पात्र था। मैंने कहा, 'बाले, क्या तुम अपना जल-पात्र मुझे दे सकती हो ?' गम्भीर मुख-मुद्रासे उसने वह मुझे दे दिया। मैने खूब पानी पिया परन्तु फिर भी एक प्यास बनी ही रही। मैंने पात्र लौटाते हुए पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है बाले ?' उसने कहा 'स्नेहमयी'।—सचमुच वह स्नेहकी साकार प्रतिमा थी।

भीम०—और तब तुम हारे हुए सैनिककी तरह वापिस लौट आये ?

विजय०—हाँ। दूसरे दिन हम सीमान्तकी ओर चले गये। परन्तु, जब हम विजयी होकर वापिस लौटे तो महाराजसे मैंने पन्द्रह दिनकी छुट्टी ले ली। मै युद्धमे घायल हो गया था। महाराजके आज्ञानुसार उसी गाँवके मुखियाके ऊपर मेरी सेवा-शुश्रूषाका भार पड़ा। स्नेहमयी उसीकी लड़की थी श्रीमन्! बस, वहींसे मेरे जीवनका एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।

भीम०—होठोंमे रहस्यमयी हँसीको लेकर वह तुम्हारे पास आती थी ?

विजय०—हाँ, वह आती थी एक रहस्यमय हँसीको लिये हुए। वह अपने कोमल हाथोंसे मेरे घावोंको धोती, मैं अपनेको भूल-सा जाता। एक दिन मैंने कहा, 'तुम बहुत सुन्दर हो!' उसने मुस्कराते हुए कहा 'मै बहुत सुन्दर तरहसे तुम्हारे घावोंको धोती हूँ, इसीलिए न ?' मैंने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा, 'मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।'

भीम०—तब उसने क्या कहा ?

विजय०—उसने कुछ नहीं कहा । केवल उसके स्निग्ध कपोलोंपर लाली छा गई । मस्तकपर पसीनेकी बूँदे मोतियोकी तरह चमकने लगीं । उसकी दृष्टि पृथ्वीपर स्थिर हो रही । उस दिनसे वह मुझसे शरमाने-सी लगी । परन्तु, तब मै पूर्ण स्वस्थ हो चुका था । मैं भी उसीके साथ उसी सरिताकी उन्ही चचल लहरोके किनारे खिली चॉदनीमे घूमने लगा ।

भीम०—तो क्या वह तुमसे प्रेम करती थी ?

विजय०—हॉ श्रीमन् ! मैने उससे कहा कि तुम दिल्ली चलो । वह तय्यार हो गई । परन्तु, उसके पिताको सन्देह हो गया और तब वह रोक दी गई । उसने बहुत अनुनय-विनय की परन्तु उसका पिता न माना । अन्तमे स्नेहमयीने आत्म-घात कर लिया । मै भी वहीं था । मृत्युमे कुछ क्षण पहले उसने मुझसे कहा था ' मै तुमसे प्रेम करती हूँ, परन्तु इस जन्ममे हमारा मिलना असभव है, इसीलिए मैने इस जीवनका अन्त कर लिया । अब हम दूसरे लोकमे मिलेंगे, प्रियतम ! ' तबसे मै उसकी स्मृतियोको छातीमे छुपाये हुए अपने इस आहत जीवनके दु खद दिनोको काट रहा हूँ ।

भीम—(ठडी सॉस खींचकर) धन्य है वह प्रेम-प्रतिमा जिसने कि प्रेमके लिए अपने जीवन तकका उत्सर्ग कर डाला !

[अजयसिहका प्रवेश । भीम और विजय सामरिक रीतिसे अभिवादन करते हैं ।]

अजय०—महाराजकी आज्ञा है कि कुछ चुने हुए सामत वेश बदलकर कन्नौज राज-पथको छोड़कर दक्षिण-पथ होकर चलें ।

भीम०—दक्षिण-पथ होकर क्यो ?

अजय०—कन्नौज-नरेशको हमारी चालोका पता लग गया है। उन्होने हमे रोकनेके लिए राज-पथ सैनिकोसे भर दिया है।

भीम०—तो हमको सो कोस अधिक चलना होगा!

अजय०—कोई चिंता नहीं। हाँ, और तुमको महाराजने अपने साथ ले जानेके लिए चुना है। मै यहींपर और सैनिकोके साथ महाराजकी आज्ञाका पालन करूँगा।

भीम०—मै वहाँ न जा सकूँगा। सेना-नायक, जिस कन्नौजमे मेरा अपमान हुआ है उस कन्नौजको न देखनेकी मै प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।

अजय०—परन्तु इस समय तो तुम उस अपमानका बदला लेने जा रहे हो भीमसिंह! अच्छा, महाराज प्रस्थानकी तैय्यारी कर रहे है, तुम भी तय्यार हो जाओ। (अजयसिंहका प्रस्थान)

भीम०—बदला! प्रतिहिंसा! (हँसते हुए) विजयसिंह, जानते हो रणचडीका आह्वान क्यो किया जा रहा है? केवल एक स्त्रीके लिए, —सयोगिताके लिए! खैर, मेरी तलवार दो। सैनिक! सैनिक!!

[एक सैनिकका प्रवेश]

भीम०—घोड़ा तैय्यार है?

सैनिक—तैय्यार है श्रीमन्!

[नेपथ्यमे दुन्दुभिकी ध्वनि होती है]

भीम०—सुन लिया विजय?

विजय०—हाँ, सुन लिया श्रीमन्!

भीम०—क्या सुना?

विजय०—दुन्दुभीकी ध्वनि।

भीम०—नहीं भोले सैनिक! वह दुन्दुभिकी ध्वनि नहीं है, वह है विधवा होनेवाली नारियोका आर्तनाद, अनाथ होनेवाले बालकोंका

चीत्कार, खाली-गोद माताओंका रुदन ! समझे ? यह सब हो रहा है केवल एक स्त्रीके लिए !—सयोगिताके लिए !

चौथा दृश्य

स्थान—कन्नौजके राजमहलका एक कमरा

समय—दूसरा प्रहर

[सयोगिता और सुनन्दा]

सयो०—महाराजकी नई आज्ञाके बारेमे तुमने कुछ सुना बहिन ?

सुनन्दा—हाँ सुना राजकुमारी !

सयो०—पितृद्रोह, कुलद्रोह, राजद्रोह, और न जाने किन किन द्रोहोके अभियोग मुझपर लगाये जा रहे है।

सुनन्दा—महाराजने क्या तुम्हारी अन्तिम प्रार्थना भी ठुकरा दी ?

सयो०—हाँ ठुकरा दी। स्वयवरसे पहले मै उनसे मिलना चाहती थी, इसलिए कि सम्भव है वे मुझे समझनेका प्रयत्न करे।—सम्भव है मै उन्हे समझा सकती कि हिन्दू नारी अगर कल्पनासे भी किसीका वरण कर लेती है, तो इस जन्ममे केवल उसीकी होकर रहती है। दूसरे पुरुषका ध्यान स्वप्नमे भी नही करती।—परन्तु,—(रोने लगती है।)

सुनन्दा—रोना हृदयकी दुर्बलता प्रकट करता है, क्षत्राणियाँ दुर्बल नही हुआ करती। राजकुमारी, हृदयको कठोर बनाओ। मैं जानती हूँ कि इस समय तुम कर्तव्याकर्तव्य और आशा-निराशाके बीच झूल रही हो। परन्तु साहसकी आवश्यकता है।—सब ठीक हो जायगा।

सयो०—पिताजी आज तक न मुझे कभी समझ सके और न कभी समझ ही सकेगे। इसलिए अब मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं ही पिताजीको समझनेका प्रयत्न करूँ। आशाओ और इच्छाओंको

हृदयमें ही समाधिस्थ कर अब मैं अपनेको राजनीतिकी वेदीपर बलिदान ही कर दूँगी बहिन !

सुनन्दा—जो राजनीति धर्मकी उपेक्षा करती है वह राजनीति आर्य स्त्रियोंको कभी मान्य नहीं हो सकती। स्मरण रक्खो राजकुमारी, राजनीति अस्थायी है और इहलौकिक। धर्म सनातन है और स्वर्गका द्वार है। जब धर्म और राज-नीतिमे विरोध होता है तब बुद्धिमान मनुष्य धर्मको ठुकराकर राजनीतिका पक्ष कभी नहीं लेता।

सयो०—तर्क करके मुझे अपने निश्चयसे न डिगाओ। ठोकरे खानेके लिए मुझे अकेला ही छोड़ दो। भाग्यकी चट्टानोपर मेरी इस छोटी-सी जीवन-नौकाको नष्ट ही हो जाने दो, इसे न बचाओ बहिन !

सुनन्दा—यह असम्भव है। राजकुमारी अब तुम्हारा व्यक्तित्व सामान्य नहीं रहा। दिल्लीश्वर पृथ्वीराजके व्यक्तित्वमें लीन होकर तुम्हारा व्यक्तित्व भी महान् हो गया है। इस समय, जब कि भारतवर्ष-पर विदेशियोके आक्रमण हो रहे हैं, तुम्हारा जीवन हमारी मातृ-भूमिके लिए परमावश्यक है। इसे नष्ट कर तुम देश, जाति और धर्मकी हानि ही करोगी।

सयो०—परन्तु मैं क्या करूँ ?

सुनन्दा—जो तुम्हारा कर्तव्य है।

सयो०—जो मेरा कर्तव्य है ? (सोचती है।)

सुनन्दा—दिल्लीपति पृथ्वीराज अपने चुने हुए सामन्तोंको लेकर दक्षिण-पथसे कन्नौज आ रहे है। गोधूलि-वेलामें वे यहाँ आ पहुँचेगे।

संयो०—कैसे मालूम हुआ ?

सुनन्दा—महाकवि चन्द बरदाईसे।

सयो०—वे यहाँ कब आये ?

सुनन्दा—आज ही ।—साधुके वेशमें नगरमें भिक्षा माँगने गये हैं । तुमसे मिलेंगे । आने ही वाले हैं ।—लो, वे आ गये ।

[नेपथ्यका गाना]

वीरोंकी सन्तान आनपै जान गँवाये,
देश-जातिका मान रखे सर्वस्व लुटाये,
दो दिनका है जीना-मरना,
कर ले प्राणी जो कुछ करना,
क्यों बनता अनजान, न फिर पीछे पछताये
वीरोंकी सन्तान आनपै जान गँवाये ।
काम तेरा है कर्तव करना,
करना है तो फिर क्या डरना ?
धन धन वह सन्तान देशके काम जो आये
वीरोंकी सन्तान आनपै जान गँवाये ।
तुमपै आँखें लगी देशकी
आशाएँ हैं जगी देशकी
धन्य धन्य वह प्राण, देशपै बलि बलि जाये,
वीरोंकी सन्तान आनपै जान गँवाये ।

सुनन्दा—अपने सगीतसे असख्य राजपूतोंके हृदयोमें वीरत्वको जगा देनेवाली उस महाकविकी स्फूर्तिदायक वाणीको सुना राजकुमारी ?

सयो०—यह वाणी मेरी मरी हुई आत्मामें भी नव-जीवनका सचार कर रही है बहिन ! धन्य हैं मेरे भाग्य जो आज उनके दर्शन प्राप्त हो रहे हैं ।

सुनन्दा—अच्छा, मैं उन्हे बुला लाती हूँ—

संयो०—हाँ, बुला लाओ बहिन !

[सुनन्दा जाती है और थोडे समयके उपरान्त साधुके वेशमें चन्द बरदाईके साथ आती है]

सयो०—कविवर, संयोगिता आपको प्रणाम करती है।

चन्द०—सावधान राजकुमारी ! तुम सब ओरसे गुप्त दूतोद्वारा घिरी हुई हो।

सुनन्दा—मैं द्वारपर खड़ी रहूँगी, तुम स्वच्छन्दतापूर्वक बाते कर लो।

(सुनन्दाका प्रस्थान)

चन्द०—महाराज पृथ्वीराज तुमसे अन्तिम उत्तर चाहते है।

सयो०—क्या दिल्लीश्वर मुझपर अविश्वास करते हैं ?

चन्द०—अविश्वास नहीं, परन्तु वे जानना चाहते है कि कल तुम उतना बलिदान करनेके लिए तय्यार हो या नहीं जितना कि समय चाहता है ?

सयो०—क्या इसमें उन्हें सन्देह है ?

चन्द०—अच्छा, आज रातको महाराज तुमसे मिलेगे। कल स्वयवरके दिन वे अपने सामन्तोके सहित मृत्युसे युद्ध करेगे। राजकुमारी सावधान ! कलका दिन इतिहासका एक भयानक दिन होगा।

संयो०—कविवर, मैं खूब सतर्क रहूँगी, आप महाराजसे कह दीजिए कि सयोगितापर आप विश्वास रक्खें।

चन्द०—विश्वास तो है ही राजकुमारी, नहीं तो दिल्लीश्वर व्यर्थ रण-चडीका आह्वान न करते, राज्यके स्तम्भ सामन्त और योद्धा जान-बूझकर मृत्युकी इस रग-स्थलीमे न आते। तुमपर वे अविश्वास नहीं करते, परन्तु यह भी जानते हैं कि नारी-हृदय स्वभावतः ही दुर्बल होता है। मै केवल यही जाननेके लिए आया हूँ राजकुमारी,

रकि आर्यावर्तकी कीर्तिके स्तम्भ महाराज पृथ्वीराजको प्राप्त करनेके योग्य शक्ति और साहस तुममे है ?

सयो०—कविवर, महाराजके लिए नहीं, वरन् आर्य नारीके आदर्शकी रक्षाके लिए मेरे हृदयमे अमित बल और साहस आ गया है। जीवन रहते मै सीता और पार्वतीद्वारा स्थापित मर्यादाका अवश्य पालन करूँगी।

चन्द०—राजकुमारी, तुम्हारा यह अलौकिक साहस हिमालयके मस्तकपर अनन्तकाल तक अकित रहेगा। गगा और यमुनाकी पावन लहरे मृदुल स्वरमे तुम्हारा कीर्ति-गान करेगी और (आकाशकी ओर इगित करते हुए) वह अनन्त नील-निलय सदैव उस गौरव-गानको प्रतिध्वनित करता रहेगा। आर्यावर्त विमुग्ध होकर तुम्हारी गुण-गाथा सुनेगा।

[सुनन्दा दौडकर आती है।]

सुनन्दा—(धीरेसे) सावधान ! पहरेदारोके बदलनेका समय हो गया है।

[पहरेदारका प्रवेश]

पहरे०—मेरा यह बेमौकेका आना क्षमा किया जाय राजकुमारी ! महाराजने दरबारके बाद ही आपसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की है।

सयो०—अच्छा, सुन लिया। (प्रस्थान)

चन्द०—तो अब मै भी चलूँ राजकुमारी !

(दोनों अभिवादन करती हैं। चन्द बरदाई जाते हैं।)

सुनन्दा०—परन्तु, दिल्लीश्वर यहाँ कैसे आ सकेंगे ? चारों ओर भारी पहरा है।

सयो०—क्यो ? पूरबके गुप्त द्वारसे तुम उन्हे दक्षिणकी ओरके कमरेमें लाना, मैं वहींपर उनसे मिल लूँगी।

सुनन्दा०—परन्तु वहाँपर भी तो सैनिक रहते हैं।

सयो०—कोई चिन्ता नहीं। उनका नायक मेरा विश्वासपात्र है। मैं उससे कह दूँगी।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—कन्नौजके राजोद्यानके बाहर

समय—रात्रि

[भीमसिंह और विजयसिह टहलते हुए आते हैं।]

भीम०—विजय, आज मैं अपनी उजड़ी हुई आशाओंके खंडहरोको अन्तिम बार देखने जा रहा हूँ। सम्भवतः अतीतके उस प्रेमके हास-कल्लोलकी प्रतिध्वनि मै वहाँ सुन सकूँ।

विजय०—(कुछ आश्चर्यसे) श्रीमन्, क्या आपने भा ?—

भीम०—हाँ विजय, मैंने भी वही भूल की थी जो कि तुमने की। —नहीं, मैं स्नेहमयीसे उसकी तुलना नहीं कर सकता। स्नेहमयी तो प्रेमकी सात्त्विक प्रतिमा थी और वह—

विजय—क्या वह अभी जीवित हैं ?

भीम०—जीवित ही नही, वे तो अब महारानी होनेवाली हैं।

विजय०—तो क्या उन्होंने विश्वासघात किया ?

भीम०—नहीं, विश्वासघात तो नहीं किया। वह मेरी ही भूल थी विजय, जो मैंने असत्यपर विश्वास किया। मैंने उसे पानी समझा था, परन्तु वह था जलती हुई मरुस्थलीका ताप,—वह थी मेरी मृग-तृष्णा!

विजय०—श्रीमन्, इस मायावी संसारमें असत्यके सिवाय और कुछ नहीं। मनुष्य यहाँ आता है और दो-चार स्वप्नोमें अपनेको भूलकर फिर चला जाता है।—यही तो मानव-जीवनकी वास्तविकता है!

भीम०—मानव-जीवनके इस दार्शनिक विश्लेषणसे मैं सहमत नहीं हूँ विजय! तत्त्ववेत्ता ऋषियोके लिए भले ही यह संसार असत्य हो और यह जीवन स्वप्नवत्, परन्तु मेरे लिए तो यह ससार भी सत्य है क्यों कि इसी ससारिक जीवनमे रहकर ही तो आत्मा उस परम सत्यको प्राप्त करनेका निरन्तर प्रयत्न करती रहती है।—ख़ैर, ये दार्शनिक बाते हैं और हमे,—सग्रामोमें सलग्न योद्धाओंको,—इन काल्पनिक बातोमे फँसे रहना शोभा नहीं देता।

विजय०—यह तो राजोद्यानकी दीवाल है श्रीमन्!

भीम०—हाँ, इसको लाँघकर भीतर चलें।

विजय०—परन्तु—

भीम०—जो योद्धा जीवनको सदैव हथेलीपर रखे रहते हैं, उन्हें किस बातका भय?

विजय०—परन्तु कन्नौज-पतिको जो मालूम हो जायगा कि दिल्लीपति अपने सामन्तो सहित कन्नौजमे आ पहुँचे हैं?

भीम०—तुम इसकी चिन्ता न करो विजय!

[दीवाल फाँदकर दोनोंका राजोद्यानमें प्रवेश]

विजय०—रजत ज्योत्स्नाका शृगार कितना मनोहर मालूम हो रहा है! सामने देखिए श्रीमन्, तालाबके शान्त वक्ष स्थलपर सुकुमार उर्म्मियोंमे हस कैसी रम्य क्रीड़ा कर रहे हैं!

भीम०—यही तालाब था विजय, जहाँ कि हम भी कभी जल-

क्रीड़ा करते थे। वसन्तकी मोहक रात्रियोमे जब कि शुभ्र ज्योत्स्ना समस्त विश्वके ऊपर निस्तब्धताकी एक रहस्यमयी चादर फैलाये हुए इस उद्यानके निकुंजोंमे अपना श्रृंगार करती थी, उस समय हम दोनों यहाँ आते थे। वह वीणा बजाती थी और मैं उस संगीतमें अपनेको खो देता था। विजय, हमारी उस क्रीड़ाको कोई भी नहीं देख सकता था। हाँ, अविकसित कलियाँ पत्रोंके हरित अवगुंठनमेंसे अवश्य झाँक झाँक कर देखा करती थीं।

विजय०—श्रीमन्, (एक दीर्घ साँस खींच कर) प्रेमकी मादक हिलोरोंमें प्रेमी इस भौतिक जगतको भूलकर एक अलौकिक संगीतमय संसारका निर्माण करते हैं जहाँ होती है · आत्म-विस्मृति, तृप्ति और शान्ति। अपनेको धोखा देनेमे, वास्तविकताको भूलनेमे ही तो उस समय आनन्द आता है श्रीमन्!

भीम०—तुम्हारी अनुभूति सत्य है विजय!—हाँ, जब कि चाँदनी उसके शुभ्र उज्ज्वल मुखपर बिखरती थी तो मन्त्र-मुग्ध होकर मैं उसके रहस्यमय लहराते हुए सागरमे विचित्र भावोंकी तरंगोंको उठते और विलीन होते हुए देखा करता था, परन्तु कुछ भी न समझ पाता था!

(दोनों फूलोंके एक निकुंजके सन्मुख पहुँच जाते हैं।)

भीम०—(एक ठंढी साँस खींचकर) वही फूल हैं, वही सुगन्ध है, परन्तु हृदय,—वह हृदय नहीं रहा! विजय, यहीं रजकणोंमें मेरी आकांक्षायें बिखरी पड़ी हैं—

[तलवार खींचे हुए चार सैनिकोंका प्रवेश]

नायक—आत्म-समर्पण कर दो!

विजय०—सावधान श्रीमन्!

भीम०—भयकी कोई बात नहीं। (नायकसे)—नायक, हम परदेशी है, नगरमे हमको कहीं भी आश्रय नहीं मिला, अतएव यहाँ चले आये। यदि हमारे यहाँ रहनेमे तुम्हे कुछ आपत्ति है तो हम जा सकते है।

नायक—तुमने राजोद्यानमे प्रवेश करके राज-नियमका उल्लघन किया है, अतएव बदी बनकर तुम्हे न्यायालयमे उपस्थित होना होगा। आत्म-समर्पण कर दो!

भीम०—नायक, यदि हमारी प्रार्थना तुम्हारे कठोर हृदयको स्पर्श नहीं कर सकती, तो लो वज्रका यह घात, जो तुम्हारे दानवी जीवनको समाप्त कर दे।

(भीमसिह नायकपर प्रहार करता है। युद्ध होता है। तीन सैनिक धराशायी होते हैं। एक सैनिक भाग जाता है।)

विजय०—अगर हम पकड़े गये, तो सारा भेद खुल जायगा। श्रीमन्, शीघ्र ही—

भीम०—स्त्रियोकी-सी यह दुर्बलता वीरोको शोभा नहीं देती।

[नैपथ्यमे भय-सूचक दुन्दभि-ध्वनि होती है। दोनों दीवाल फाँदकर अदृश्य हो जाते हैं। कोलाहल करते हुए बहुतसे सैनिक आते हैं।]

एक सैनिक—वे इस ओर गये होंगे।

दूसरा सैनिक—जल्दी करो।

तीसरा०—अच्छा उसी ओर चलो।

(सब जाते हैं)

———

छठा दृश्य

स्थान—कन्नौजके राज प्रासादका अन्त पुर

समय—रात्रि

[सयोगिता, रानी और जयचद]

जय०—सन्तान मनुष्यकी इच्छाओं और आकांक्षाओंका साकार रूप है; इसीलिए तो वह इतने प्रेमसे उसकी रक्षा करता है,—उसके लिए अपने जीवन तकको मिटा देता है। बड़ी होकर सन्तानका यह कर्तव्य नहीं है कि वह अपने पितासे, जिसने कि धूप और आँधी अपने सिरके ऊपर झेल कर अपनी छायामे उसके जीवनका विकास किया, विश्वासघात करे और उसकी आशाओंको नष्ट कर दे।

रानी—मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने सन्तानके कर्तव्यका जो मार्ग बतलाया था वह तेरे लिए अपरिचित नहीं होना चाहिए, बेटी! हमारे पूर्वजोकी महत्ता इसीमे थी कि सबसे पहले वे माता-पिताके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करते थे।

सयो०—पिताजी, कर्तव्य-अकर्तव्यको समझनेके लिए मेरे अदर अभी विवेकका इतना विकास नही हुआ है। आप जो कुछ भी आज्ञा देगे, मैं उसका पालन करनेका प्रयत्न करूँगी।

रानी—प्रयत्न?—इसका अभिप्राय?

संयो०—माँ, मै आज स्पष्ट कहे देती हूँ कि तुम्हारी वह पुत्री सयोगिता, जिसपर कि सारे राज्यकी आशाये केद्रित थीं, मर गई है। मैं अब वह सयोगिता नहीं रही।

जय०—(क्रोधसे) यदि वह सयोगिता मर गई है तो समझ ले कि वह पिता भी मर गया है। अब तेरे और मेरे बीच केवल राजा

और प्रजाका सम्बन्ध रह गया है। मेरी आज्ञाकी अवहेलना करना राजद्रोह होगा।

रानी—महाराज !

जय०—जिस हृदयमे मै सुकुमार बेलोको सींच सकता हूँ, उसी हृदयमे मै कँटीली झाड़ी भी लगा सकता हूँ। यदि तू इतनी नष्ट हो गई है कि पिताका अपमान करे, तो मै भी अब इतना कठोर हो गया हूँ कि निर्भयतासे तुझे कुचल दूँ।

रानी—महाराज, इतने कठोर न बनिए। संयोगिता अभी नादान है, उचित और अनुचित नहीं समझती।

जय०—मैं उसे यही तो समझा रहा हूँ। अब उसकी समझमें आ जायगा। (जयचन्दका प्रस्थान)

रानी—सुन लिया बेटी ?

संयो०—हाँ, सुन लिया माँ !

रानी—तो तूने अब क्या निश्चय किया है ?

संयो०—अपने कर्त्तव्य-पालनका ही निश्चय किया है माँ ?

रानी—वह क्या ?

संयो०—कि अपनी आत्मासे विश्वास-घात न करूँगी। चाहे मुझे सारे संसारसे भी विद्रोह करना पड़े, तो भी मै उसकी चिन्ता न करूँगी।

रानी—तो क्या मैं यह समझ लूँ कि सारे राज-वंशको नष्ट करनेके लिए मेरी कोखसे मृत्युने जन्म लिया है ? (एक दीर्घ निःश्वास खींचकर) मुझे क्या मालूम था कि तेरी बाल्य-कालकी उस मनोहर हँसीमें यह

प्रलयकी बिभीषिका छिपी हुई है ! मै कैसे जान सकती थी कि अमृतके नीचे हालाहलका सागर लहरे मार रहा है !

सयो०—मां, यदि तुम्हे भी इसीमे सन्तोष है कि आत्म-बलिदान करके तुम्हें प्रसन्न करूँ, तो मै आज ही रात पिताके चरणोमे अपने इस दुर्वह जीवनको समाप्त कर मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीके स्थापित सन्तान-कर्तव्यका पालन करूँगी !

रानी—इस तरह अधीर न बन बेटी ! तेरी प्रसन्नतामे ही हमारी प्रसन्नता है। तेरे ही सुखके लिए इतनी अतुल धन-राशिको व्ययकर स्वयवर-मडपकी रचना की गई है। दूर दूर देशसे अनेक राजा आये हैं। जो सबसे अच्छा लगे उसीको पति वरण कर लेना।

सयो०—मेरे सामने अब तक केवल दो मार्ग थे आत्मविसर्जन या दिल्लीश्वरका पाणि-ग्रहण। परन्तु अब मेरे सामने केवल एक ही मार्ग रह गया है। जीवनके इस टिमटिमाते हुए दीपकको, जिससे कि सारे राज्यमे भीषण अग्निके धधक उठनेका डर है, मै आज ही रात बुझा दूँगी।

रानी—आखिर तू इतनी दृढ़ क्यो है ?

सयो०—क्यो कि एक दिन मैने गिरिजाको साक्षी बना कर उन्हींको अपना पति वरण कर लिया है। अगर अब मै दूसरेको अपना पति चुनूँगी तो अधर्म करूँगी। माँ, मुझे यह पाप करनेके लिए बाध्य न करो। इस जन्ममे मैं केवल उन्हींकी पत्नी रहनेकी प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ।

रानी—समझी !—सयोगिता, तूने भयकर भूल की है !

सयो०—मुझे उस समय यह मालूम न था माँ, कि इस कारण

सारे राज्यमें ऐसी ज्वाला धधक उठेगी। मैं नादान थी; मेरी भूलके लिए तुम तो मुझे क्षमा कर दो।

[सुनन्दाका प्रवेश]

सुनन्दा०—महारानी, राजकुमारीसे अवश्य ही भूल हुई है! परन्तु उस भूलको तुम एक नई भूलसे सुधारनेका प्रयत्न न करो! सावधान! प्रलयके बादल राजनीतिक गगन-मडलपर छा रहे हैं। विनाशकारी तूफान उठनेहीवाला है। तुम्हे सावधानीसे चलना पड़ेगा, अन्यथा ये लहलहाते हुए दो राज्य खडहरोमे परिणत हो जायँगे। आर्य-जातिकी कीर्ति सदाके लिए लुप्त हो जायगी!

रानी—परन्तु सुनन्दा, मै कर क्या सकती हूँ?

सुनन्दा—इन घटनाओंको विषमतर होनेसे रोकनेके लिए केवल यही एक उपाय शेष है कि तुम राजकुमारीको महाराज पृथ्वीराजसे विवाह करनेकी अनुमति दे दो। कल्याण इसीमे है।

रानी—यह असम्भव है सुनन्दा, यह कदापि न हो सकेगा।

सुनन्दा—यदि यह न हो सकेगा तो महारानीजी, आप अपनी आँखो प्रलयका ताडव देखेगी, विनाशका भैरव नाद सुनेगी, कन्नौजके राज-पथोमे वीरोके रक्तकी नदियाँ बहती देखेगी और देखेंगीं उनमे डूबते हुए भारतवर्षके विध्वस्त भविष्यको! तुम्हे मालूम हो जाना चाहिए महारानी, कि दिल्लीश्वरके वीर सैनिक सीमान्तपर आ पहुँचे हैं।

रानी—परन्तु, इस राजनीतिक चालको मैं कैसे रोक सकती हूँ?

सुनन्दा—आप भी राजनीतिक चाल खेलिए महारानी! यह मै मानती हूँ कि ऐसा करना महाराजसे विश्वास-घात होगा, परन्तु स्मरण रखिए कि महाराजसे श्रेष्ठ है कन्नौज राज्य और कन्नौज राज्यसे

श्रेष्ठ है समस्त आर्य-जाति। व्यक्तिगत स्वार्थोंके लिए असख्य निरीह प्रजाका रक्त बहाना राजधर्म नहीं है। यदि आप राजकुमारीकी चिंता न करें तो न सही, परन्तु, स्वर्गसे भी पवित्र जन्म-भूमिकी तो चिन्ता कीजिए!

रानी—सुनन्दा, इन सब बातोकी कल्पना-मात्रसे मेरा हृदय सिहर रहा है। इस समय मैं कुछ नहीं सोच सकती, मैं हारी हुई-सी हूँ।

(प्रस्थान)

सुनन्दा—राजकुमारी, महान् परीक्षाका समय है, हृदयको दृढ़ करो, भयभीत न होओ, भय मनुष्यको असफल बना देता है।

सयो०—बहिन!

सुनन्दा—हाँ, दिल्लीश्वर तुमसे मिलेगे। परन्तु, अपनी इस डावाँडोल अवस्थाका उन्हें परिचय न देना। निर्भीकतासे बाते करना। उन्हें विश्वास दिलाना कि हमारे ये दो जीवन सदैवके लिए एक हो गये है।

सातवाँ दृश्य

स्थान—कन्नौज राजमहलका एक कमरा

समय—रात्रि

[जयचद, मत्री, सेनापति और सैनिक।]

सैनिक—मैंने उन्हे अच्छी तरहसे पहिचान लिया महाराज, वे सामन्तवर भीमसिंह ही थे। उनकी वाणीमे वैसा ही गाम्भीर्य, नेत्रोंमें वैसा ही तेज, मुखमडलमे वैसा ही ओज और हाथोमें वैसा ही कौशल था, जैसा कि उस दिन तिरौरीके युद्ध-क्षेत्रमें मैने देखा था।

मत्री—उसने तुमसे कुछ कहा?

सैनिक—उन्होंने कहा कि मैं परदेशी हूँ, नगरमें मुझे कहीं आश्रय नहीं मिला, इसलिए यहाँ आ गया।

जय०—तूने उसे कहाँ देखा?

सैनिक—तालाबके किनारेवाले मालती-निकुजके सामने वे अपने एक साथीके साथ थे।

जय०—उसको अपने साथीसे कुछ कहते हुए भी सुना?

सेनिक०—महाराज, मैंने उन्हे केवल इतना कहते हुए सुना कि यहीं रजकणोमे मेरी आकाक्षाये बिखरी पड़ी हैं।

जय०—(सेनापतिसे) सेनापति, आप नगरके कोने कोनेको छान डालिए और जिस किसीपर जरा भी सन्देह हो उसे उसी वक्त बन्दी कर लीजिए।

सेना०—जो आज्ञा महाराज!

(सेनापति और सैनिकका सामरिक रीतिसे अभिवादन करके प्रस्थान)

मन्त्री०—बहुत सम्भव है कि सैनिकने पहिचाननेमे भूल कर दी हो। भीमसिंहका इतनी जल्दी यहाँ आ पहुँचना असम्भव है।

जय०—नहीं मन्त्रिवर, मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि वह भीमसिंह ही था। वह चाहे जिस तरहसे आया हो, परन्तु, वह आ गया है और इस समय कन्नौजमे है। (कुछ सोचकर) वह वही वह मालती-कुज है जहाँ वह सयोगिताके साथ—

मन्त्री०—तो, इसका अर्थ यही समझा जाय कि दिल्लीके सैनिक कन्नौज आ पहुँचे हैं?

जय०—समझना ही पड़ेगा।

मन्त्री०—तब तो यह अलौकिक पराक्रम है महाराज!

जय०—अवश्य।

मन्त्री—परन्तु परसों ही तो गुप्तचरने सूचना दी थी कि भीमसिंह सेनाके साथ प्रस्थान कर रहे है। घोड़ेमे कन्नौजका रास्ता एक सप्ताहका है। इतनी जल्दी उनका यहाँ आ पहुँचना मानुषी पराक्रम नहीं, महाराज !

जय०—पृथ्वीराजकी सभी बाते आश्चर्यजनक हुआ करती है मन्त्रीजी !

मन्त्री—परन्तु, सीमान्तपर हमारे सैनिक मुस्तैद खड़े है और राज्यमें आनेवाले प्रत्येक परदेशीकी जाँच जो कर रहे है ? भीमसिंह राज्यके पुराने सामन्तोमे रह चुके है। प्रत्येक पुराना सैनिक उन्हे जानता है। कमसे कम उनका पहचाने गये बिना कन्नौजकी सीमाके भीतर आ जाना बिलकुल असम्भव है।

(जयचन्द कुछ सोचने लगते हैं।)

मन्त्री—यदि यह बात सच मान ली जाय तो भीमसिंह अवश्य राजकुमारीसे मिलनेका प्रयत्न करेगे।

जय०—तो चलो, हम भी वहीं चले। सारी बात मालूम हो जायगी।

(दोनोका प्रस्थान)

आठवाँ दृश्य

स्थान—कन्नौज-राजमहल, दक्षिणके द्वारके समीपका एक गुप्त कमरा

समय—रात्रि

[पृथ्वीराज और सयोगिता]

पृथ्वी०—मानवोचित कोमलताको भूलकर आज तक मैं सिर्फ कठोरताके साथ ही खेल रहा था। तुमसे यह न देखा गया। प्रेम-लोकसे तुम मेरे हृदयमे सत्यका प्रकाश फैलानेके लिए उत्तर आईं, मैं चकचौंधा गया। मैंने देखा प्रकाशसे उज्ज्वल तुम्हारा अलौकिक सौन्दर्य और सुना हृदयको उन्मत्त बना देनेवाला सुमधुर सगीत। तुम मानवी नहीं, स्वर्गकी देवी हो सयोगिते !

सयो०—ऐसा न कहिए देव, मै तो आपके चरणोंकी दासी हूँ, और सदैव कामना करती हूँ कि अनन्तकाल तक आपके चरण-कमलोकी सेवा करनेका मुझे सौभाग्य मिले।

पृथ्वी०—तुम धन्य हो सयोगिते! अब हमारे ये दो अस्फुट स्वर एक सुहावनी सगीत-लहरीमे मिल गये है। इन्हे कोई भी मनवी शक्ति विच्छिन्न नही कर सकती।

सयो०—देव, प्रारब्ध बलवान् है!

पृथ्वी०—कल एक भयानक दिन होगा, सयोगिते!

सयो०—नही, एक मधुर दिन होगा देव!

पृथ्वी०—मधुर?

सयो०—हॉ, मधुर। परीक्षाका दिन वीरोंके लिए मधुर ही होता है। कल आपकी वीरता और निर्भीकताका एक स्मरणीय दिन होगा।

पृथ्वी०—अवश्य ही कलका दिन मेरे जीवनका एक स्मरणीय दिन होगा। सयोगिते, कल तुम समस्त कन्नौज-राज्य-शक्तिकी उपेक्षा कर मुझे—

[सुनन्दा दौडकर आती है।]

सुनन्दा—राजकुमारी सावधान! महाराज और मत्री तुम्हारे कमरेकी ओर गये है। दिल्लीश्वर, अब आप जाइए।

पृथ्वी०—अच्छी बात है। पाँच सौ सामन्तोको लेकर कल मैं सिंहद्वारपर तय्यार रहूँगा।

सयो०—देव, मैं भी तय्यार रहूँगी!

सुनन्दा—महाराज, शीघ्रता कीजिए।

सयो०—देव!

पृथ्वी०—सयोगिते ! (पृथ्वीराजका प्रस्थान)

सयो०—पिताजीको मालूम तो नहीं हो गया ?

सुनन्दा—पाँच सौ सामन्त आये हैं ! सम्भव है कि गुप्तचरोंका किसीपर सन्देह हो गया हो।

संयो०—तो—

सुनन्दा—नहीं, इन गुप्त बातोंके खुल जानेपर भी महाराज दिल्लीश्वरकी शक्तिको रोकनेमे असमर्थ रहेगे। उनका रण-रौद्र रूप अभी तुमने नहीं देखा राजकुमारी, वे बड़े ही भयानक है।

सयो०—क्यो न हो बहिन, उन्हीके पराक्रम और वीरत्वके कारण तो आज आर्य-जातिकी कीर्ति सुरक्षित है, नहीं तो—

सुनन्दा—(धीरेसे) मन्त्री !

[मन्त्रीका प्रवश]

मत्री०—क्यो, तुम किसीकी प्रतीक्षामे तो नहीं हो राजकुमारी ?

सयो०—नहीं तो मत्रिवर !

मत्री०—आज कितनी मनोहर रात्रि है ?

संयो०—हाँ, मत्रिवर !

मत्री०—अभी मुझे एक बातकी याद आ गई।

सयो०—कौन-सी बात ?

मत्री—जब तुम बहुत छोटी थीं, तो एक रातको तुमने नक्षत्रोंकी ओर सकेत करते हुए मुझसे पूछा, ये क्या है ?

सयो०—(हँसते हुए) तो आपने क्या कहा था मत्रिवर ?

मत्री—मैं स्वय नहीं जानता था कि वास्तवमे वे क्या हैं। परन्तु तुम्हें बहलानेके लिए मैंने कह दिया—बेटी, ये स्वर्गके दीपक हैं

जिनके प्रकाशमे तुम्हारी ही तरह सुन्दर, छोटी छोटी देव-बालायें खेला करती है। मैंने तुम्हे तो बहला दिया परन्तु स्वय विचारमें पड़ गया कि आखिर ये है क्या ? बादको एक विद्वान् ज्योतिषीने मुझे समझाया कि ये सब दुनियाये है जिनका आकार हमारी दुनियासे भी कहीं बडा है। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। कितना विशाल, कितना कल्पनातीत और कितना रहस्यमय है यह ब्रह्माड ! परन्तु, बादको मुझे मालूम हुआ कि इस ब्रह्माडसे भी अधिक रहस्यमय एक वस्तु है।

सयो०—वह क्या ?

मत्री०—स्त्री। राजकुमारी, स्त्री रहस्यका एक अनन्त सागर है जिसकी कि थाह अभीतक कोई न पा सका। (मन्त्री मुस्कराते हैं।)

नवॉ दृश्य

स्थान—कन्नौजका दरबार

समय—दो प्रहर

[जयचद क्रोधमे इधर उधर टहल रहे है। सेनापति और मत्री खडे हैं]

जय०—मै उसे चाहता हूॅ, जीवित हो या मरा,—सेनापति, कन्नौजराज्यके गौरवका अपमान कर उसने मेरे हृदयमे आग सुलगा दी है। अब मै उसीके रक्तसे इसे बुझाऊँगा।

सेनापति—महाराज, मैने पॉच हजार चुने हुए सवारोको उनका पीछा करनेके लिए भेज दिया है। अभी दस हजार सैनिकोंको और लेकर स्वयं मै भी जाता हूॅ। यदि सीमान्ततक वे बदी न बनाये जा सके तो मै वहीं रुक कर आपकी आज्ञाकी राह देखूँगा।

जय०—मेरी आज्ञाकी राह देखनेकी कोई ज़रूरत नहीं। तुम उसका पीछा करते जाना। मेरे अनादरपर प्रसन्न होनेवाली उस

दिल्लीको ऐसा विध्वस्त करना जिससे कि उसका कुछ भी शेष न रहे। (क्रोधमे इधर उधर टहलते हैं) मन्त्रीजी, उसके हाहाकारमें मैं सुनूँगा आनन्द-सगीतका स्वर, और उसकी रक्त-धारमे पाऊँगा जीवन-दायक अमृत।—सेनापति, शीघ्रता करो।

मन्त्री—ठहरिए सेनापति,—महाराज, हमारे सैनिकोंका शत्रुओंकी राजधानीमे प्रवेश करना भयसे खाली नहीं। वे वहाँकी परिस्थितिसे अनभिज्ञ हैं। यदि शत्रुओंने पथोको तोड़कर या रोककर उन्हे बंदी बना लिया तो? महाराज, जब तक कि सग्रामकी पूरी तैय्यारी नहीं की जाती तब तक युद्धके लिए शीघ्रता करना राजनीति नहीं।

जय०—अच्छा सेनापति, राज्यकी सीमाके अन्दर ही उसे बदी बनाओ। यदि दुर्भाग्यवश वह सीमान्त तक न पकडा गया तो तुम वहीं रुक जाना। मै शेष सैनिकोको लेकर आता हूँ। भावी कार्य-क्रमके विषयमें फिर सोचा जायगा।

सेना०—जो आज्ञा महाराज!

(प्रस्थान)

जय०—(कुछ सोचकर) कभी कभी सोचता हूँ, ससार कितना रहस्यमय है! छलनाये सदैव अपना मायावी खेल दिखाकर मनुष्यको बेसुध बनाये रखती हैं। वह वास्तविकताको भूलकर असत्यपर विश्वास करना सीख जाता है और जब वह असत्यके पीछे भटक भटक कर पतनके गढ्ढेमे गिर पड़ता है तब उसे चेतना आती है,—तब वह समझ पाता है कि वह सब मृग-मरीचिका थी।—परन्तु तब तक वह समझना सब व्यर्थ हो चुका होता है, मन्त्रीजी!

मन्त्री—महाराज, अकर्मण्य बना देनेवाली ये बाते क्षत्रियोचित

नहीं। मैं जानता हूँ कि कभी कभी असफलता मनुष्यको विचलित कर देती है। वह ऐसी अवस्थामें ससारको स्वप्नवत् मिथ्या समझने लगता है और अपनी अभिलाषाओंको मृगतृष्णा, परन्तु, हृदयको दृढ करनेसे वीर पुरुष शीघ्र ही ऐसी मनोदशापर विजय प्राप्त कर लेते है। वास्तवमे ये सब वीरताकी परीक्षाएँ होती हैं महाराज!

जय०—मन्त्रिवर, यह मेरी परीक्षा नहीं, यह तो मेरा विनाश है। विष मेरे गलेके नीचे उतर चुका है। मेरी मानसिक स्थिति विचलित हो चली है, और यह मेरी कायरताका नहीं, मृत्युका चिह्न है!

मन्त्री०—महाराज, दिल्लीपतिकी इस अमानुषी चोटसे राज्यकी स्थिति अस्थिर हो रही है। यदि राज्यके आधार-स्तम्भ आप ही अपनी स्थितिको विचलित कर बैठेगे तो उसका विनाश अनिवार्य है। यह मैं जानता हूँ महाराज, कि आपके हृदयपर भयकर प्रहार हो चुका है, परन्तु, राज्यके हितके लिए आपको अपने हृदयकी वेदना हृदयमें ही छिपा रखनी चाहिए।

जय०—ठीक कहते हो मत्रीजी, मैं अपने इन असहाय आँसुओंको किसी शून्य निर्जन स्थानके रज-कणोमे बिखेर दूँगा ताकि लोग मेरे हृदयके इस उद्वेगको न जान सके।

दसवाँ दृश्य

स्थान—कन्नौज राज-महलका अन्त पुर

समय—तीन पहर

[रानी चिन्तामे बैठी हुई हैं। सामने सुनन्दा खडी है।]

सुनन्दा—जैसे ही राजकुमारीने स्वर्ण-मूर्तिके गलेमें माला पहिनाई वैसे ही दिल्लीश्वरने उनको अपनी बलिष्ठ भुजाओंसे उठाकर घोड़ेपर बिठा

लिया और तुरन्त ही विद्युद्वेगसे वे क्षितिजकी छातीको चीरकर विलीन हो गये। असख्य कण्ठोंमेंसे 'दिल्लीश्वर पृथ्वीराजकी जय!' की ध्वनि निकल पड़ी। वायु-मडल प्रतिध्वनिसे गूँज उठा। उनके विश्वसनीय अश्वारोही सामन्त भी शत्रुओंके हृदयोंको चौंकाते हुए पृथ्वीके शांत वक्ष:स्थलको कम्पायमान करके निकल गये। कन्नौजकी शक्ति उस दैवी पराक्रमके सामने किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रही।

रानी—सुनन्दा, यह सब कुछ मैने अपनी आँखो देखा। मैंने देखा वीरत्वकी उस साकार प्रतिमाको! ओफ्, कितनी निर्भीकता, कितना पराक्रम!

सुनन्दा—महारानी, आपने उनका पूरा पराक्रम अभी नहीं देखा। उन पॉच सौ सामन्तोका पीछा कन्नौजके पॉच हजार अश्वारोही सैनिक कर रहे है और अभी सेनापति और भी दस हजार सैनिकोंको लेकर गये हैं। भयकर परीक्षा तो अब होगी।

रानी—सत्यवती, अगर अब सयोगिता—

सुनन्दा—यह असम्भव है महारानी! दिल्लीश्वरकी शक्ति तूफानी सागरकी प्रचड लहरोकी तरह है, और जैसे उन लहरोंपर विजय प्राप्त करना मानवीय शक्तिके परे है, वैसे ही दिल्लीपतिका सामना करना भी कन्नौज-राज्यकी शक्तिके परे है।

रानी—पिताके हृदयपर चोट पहुँचाकर उसने बड़ा अत्याचार किया है, परन्तु, फिर भी मैंने उसे क्षमा कर दिया सुनन्दा! न्यायपर माताके हृदयने विजय प्राप्त की।

सुनन्दा—परन्तु महारानी, आपने अपनी उस रास्ता भूली हुई पुत्रीको आशीर्वाद तो नहीं दिया!

रानी—मैं इतनी योग्य नहीं कि दिल्लीश्वरकी महारानीको कोई आशीर्वाद दे सकूँ। यदि होती तो आज ऐसे उत्सवके दिन कन्नौजके पथोंमे शोककी अँधेरी न छाई होती, क्षितिजमे बवडर न उठता, तूफ़ान न चलता, बिजली न गिरती !

सुनन्दा—महारानी, बिजली गिर चुकी है, इसलिए तूफान भी शान्त हो गया है, बादल भी फट गये है। अब इस स्वच्छ वायु-मण्डलको फिरसे अन्धकारमय न बनाइए। अपनी उस पथ-भ्रांत पुत्रीकी कल्याण-कामनाके लिए उसे शान्त ही रहने दीजिए, नहीं तो वह क्षुद्र सुकुमार जीवन नष्ट हो जायगा।

रानी—आह रे माताका हृदय ! तू संतानके अपराधोंसे क्षुब्ध होकर भी अन्तमे उसे प्रेम ही देता है !

सुनन्दा—महारानी, बिना आपकी आज्ञाके राजकुमारीने जीवनके नवयुगमे प्रवेश किया है। आप उन्हे आशीर्वाद दीजिए, नहीं तो राजकुमारी मॅझधारमे ही डूब जायेंगी।

रानी—अच्छा सुनन्दा, तू दिल्ली जा और संयोगितासे कह कि तेरी मॉका आशीर्वाद है, तू सदैव सुखी रहे।

सुनन्दा—महारानी, राजकुमारी तभी सुखी रह सकती हैं जब कि दिल्लीश्वरकी मानसिक स्थिति ठीक रहे और वह तभी ठीक रह सकती है जब कि कन्नौजकी सेना वापिस बुला ली जाय। राजनीतिक वायुमण्डल जब शान्त होगा तभी वे शान्त हो सकेंगे।

रानी—अच्छा सुनन्दा, मैं महाराजाको समझानेका प्रयत्न करूँगी कि वे भी मेरी तरह अपनी संयोगिताको क्षमा कर दें। संभव है, उनका वह कुचला हुआ प्रेम फिरसे जाग उठे।

[दासीका प्रवेश]

दासी—महारानी, महाराज युद्ध-क्षेत्रमें जा रहे है और आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

रानी—सुनन्दा, मै जाती हूँ। तेरा दिल्ली जानेका प्रबन्ध कर दूँगी, परन्तु पहले महाराजसे मिल आती हूँ। सम्भव है, वे मेरी बातको मान जायँ। (रानीका प्रस्थान)

सुनन्दा—मातृ-हृदय, तू धन्य है! विष पीकर भी तू सतानको अमृत देता है। धन्य हो ससारकी माताओ! तुम धन्य हो!

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—दिल्लीमें सेनापति अजयसिंहका मकान

समय—दोपहर

[भीमसिंह और विजय]

भीम०—विजय, दुर्भाग्यने सदैव मेरा पीछा किया। आजतक कभी मैंने शान्तिसे एक क्षण व्यतीत नहीं किया। एक दुःखके बाद दूसरा, दूसरेके बाद तीसरा दुःखोंका ताँता मेरे जीवनके साथ लगा ही रहा। जिससे मैंने प्रेम किया उसने मुझे ठुकराया, जिसने मुझसे प्रेम किया उसे समयने अपने निर्दय हाथोंसे छीन लिया। जिस समय संसारने मुझे अपमानित किया, मेरी ही बहिनने मुझे देशद्रोही कहकर छोड़ दिया सेनापति अजयसिंहने मुझे अपने स्निग्ध प्रेमकी छायामें आश्रय दिया। परन्तु क्रूर विधातासे यह न देखा गया। निर्मम होकर उसने मेरे आश्रय-तरुको उखाड़ दिया और एक बार फिर मुझे इस अनन्त आकाशकी छायामें असहाय बना दिया।

विजय०—श्रीमन्, उनका जीवन धन्य है। उन्होंने कैसी वीरतासे अपने देशके गौरवके लिए आत्मोत्सर्ग किया!

भीम०—यदि यही बात होती तो मुझे दुःख न होता। परन्तु

तुम नहीं जानते कि हमारे देशके कर्णधार प्राय. अपने स्वार्थोपर राष्ट्रीयताका आवरण डालकर हमे उनकी पूर्तिका साधन-मात्र बना लेते हैं। भला सयोगिना-हरणमें जो इतने सामन्तोका रक्त बहाया गया है, उससे हमारे राष्ट्रका क्या भला हुआ ? सयोगिता दिल्लीश्वर पृथ्वी-राजसे प्रेम करती है जिसका मूल्य उन्होने अपने चुने हुए सामन्तोंके सर कटवाकर दे दिया !—बस, इतना ही !

विजय०—(कुछ सोचकर) सचमुच ही दिल्लीश्वरने यह सब अनुचित किया।

भीम०—मुझे जब उर्मिलाका ध्यान आता है तो मै सिहर उठता हूँ। मैं उसे कैसे मुँह दिखाऊँगा ! सीमान्तकी ओर प्रस्थान करनेसे पहले मैंने उससे प्रतिज्ञा की थी कि मै जीतेजी सेनापतिपर शस्त्रका एक भी आघात न होने दूँगा, परन्तु, मेरी ही आँखोके सामने यह वज्राघात हुआ और मै असहाय मूर्तिके समान खडा हुआ देखता रहा !

विजय०—इसमे आपका क्या दोष है श्रीमन् ? आप स्वय सेनापतिकी आज्ञानुसार ही तो महाराजके साथ आगे गये थे और वे स्वय शत्रुओकी गतिको रोकनेके लिए पीछे रह गये थे। उसी सघर्षमे उन्हे वीर-गति प्राप्त हो गई। आप तो उस समय वहाँ उपस्थित भी न थे?

भीम०—परन्तु मेरा वहाँ रहना तो आवश्यक था।

विजय०—परन्तु, सेनापतिकी आज्ञाका उल्लघन करना भी तो सैनिक मर्यादाके विपरीत है ?

भीम०—ठीक कहते हो विजय, परन्तु प्रेम मर्यादासे कहीं बढ़कर होता है। अब मैं उर्मिलासे किस मुँहसे कहूँगा कि सैनिक-मर्यादाकी रक्षा करनेके लिए मैने प्रेमको ठुकरा दिया ?

विजय०—परन्तु आपने जान-बूझकर तो ऐसा किया नहीं।

भीम०—परन्तु मैं उर्मिलाको कैसे विश्वास दिला सकूँगा कि अनजानमे मुझसे यह भयकर भूल हुई है? आह! उसने उन दो भोली भोली आँखोको मेरे मुहपर गडाये हुए अपने पिताका जीवन-रक्षण माँगा था! वह जानती थी कि सेनापतिका जीवन सकटमें है। मैंने उससे प्रतिज्ञा की थी कि मैं उनके साथ रहूँगा, परन्तु सब व्यर्थ हुआ। अब तो वह यही समझेगी कि—

[उर्मिलाका प्रवेश]

उर्मिला—(अवरुद्ध कठसे) सेनापति!

भीम०—(चौंककर) कौन? उर्मिला!

उर्मिला—नहीं, मैं उलटा नहीं समझूँगी। इसमे तुम्हारा कुछ दोष नहीं। तुमने अपनी मर्यादाका पालन किया और पिताजीने अपने कर्तव्यका।

भीम०—उर्मिला!

उर्मिला—भाग्य-चक्रकी गतिको कोई भी नहीं रोक सकता। सेनापति, मेरी आँखोंके सामने अँधेरा छा रहा है!

(उर्मिला लटखडाकर गिर पडती है।)

दूसरा दृश्य

स्थान—दिल्लीका राजोद्यान

समय—रात

[सयोगिता एक निकुजके नीचे बैठी हुई गा रही है।]

चन्द्र-किरनसे पूछा मैंने—
'देखा,—उनको?'
बोली, 'किनको?'

फिर हँसी, खिलखिला उठे गगनमें तारे,
मै मरी लाजके मारे।

था बनमें पछी बोल रहा,
था पवन विपिनमें डोल रहा,
पूछा मैंने, 'देखा उनको ?'
बोले, 'किनको ?'
फिर वे हँसे, खिलखिला उठे विपिन-बन सारे,
मै मरी लाजके मारे।

मै लाजों मरी,
निराशा भरी,
थकी-सी बैठी थी मन मारे।

अचानक आँखें मेरी झपी,
चेतना डूबी सपनेमें·
बाहरी बातें हुई विलीन
खो गई जब मै अपनेमें
देखा मैंने—
ढूँढा जिनको बन-उपवन
मन बसे वे प्रीतम प्यारे
मै मरी हर्षके मारे।

[पृथ्वीराजका प्रवेश]

पृथ्वी०—महारानी !

सयो०—(चौंकते हुए) ओह, आप ! आइए स्वामी ! मै कबसे आपकी प्रतीक्षामें बैठी हुई हूँ।

पृथ्वी०—मुझे अब मालूम हुआ कि पृथ्वीकी निस्तब्ध छातीके नीचे विस्फोट छिपा रहता है, समुद्रकी शीतल सतहके नीचे वाडवकी ज्वाला धधकती रहती है।

सयो०—प्रियतम, तभी तो यह ब्रह्माण्ड रहस्यमय कहलाता है।

पृथ्वी०—हाँ, अवश्य रहस्यमय है। नहीं तो एक कोमल दुर्बल नारी एक विशाल राज्यकी महती शक्तिका तिरस्कार कैसे कर सकती? मैं अब समझ गया कि स्त्रियोको 'अबला' कहना कितना भ्रमात्मक है!

सयो०—जब कि आकाशमे षोडश कलायुक्त चन्द्रमा हँसता हो, चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई हो,—फूलोके कुजोमे भौरे गुँजार रहे हों, हृदयको उन्मत्त बना देनेवाली वसन्तकी रात्रि भागती हुई जा रही हो, तालाबकी सुकुमार लहरोपर चाँदनीका शृगार हो रहा हो, मलयानिल किसी रहस्यमय सदेशको सुनाता हो, और जीवनके दो साथी नयनाभिराम प्रकृतिके बीचमे हो, उस समय नीति, ज्ञान और शास्त्रकी बाते तो नहीं की जाती है स्वामी!

पृथ्वी०—समझा सयोगिते!

सयो०—स्वामी, मलयानिलके सुकुमार झोकोमे ये अस्फुट कलियाँ कितनी मस्त होकर झूम रही है! आह! कितनी लुभावनी रात है! आसमानके तारे मदभरे नेत्रोसे झॉक रहे है।

पृथ्वी०—सयोगिते, तुम कितनी सुन्दर दिखाई दे रही हो! स्वर्गकी देवीकी तरह प्रेमके रथपर बैठकर तुम मेरे हृदयको सरस बनानेके लिए यहाँ आई हो।

सयो०—प्रियतम, हमारे हृदयोकी गगा-यमुना मिल गई हैं, अब यही कामना है कि इस पवित्र सगमके किनारे तुम्हारी छायाके नीचे बैठी हुई प्रेमके गीतोकी माला गूँथा करूँ। तुम युद्धमे विजयी होकर लौटा करो और मै तुम्हारे उन्नत ललाटपर विजय-तिलक लगाकर उन गीत-मालिकाओको पहिनाया करूँ।

पृथ्वी०—असफलताओं और निराशाओंसे भरी हुई इस मरु-भूमिको तुमने मेरे लिए स्वर्गभूमि बना दिया। सयोगिते, तुम मानवी नहीं देवी हो।

सयो०—स्वामी!

पृथ्वी०—मेरे हृदयकी रानी!

संयो०—स्वामी, अब हमें बहिन सुनन्दाको यहाँ बुला लेना चाहिए।

पृथ्वी०—तुमने यह तो कभी बताया नहीं कि सुनन्दा कौन है?

सयो०—वह स्वर्गकी देवी है स्वामी, उसीके कारण तो हमें आजका दिन देखनेको मिला है। उसके हृदयमें सदैव दुःखका सागर हिलोरें मारता रहा है, परन्तु फिर भी उसके अधरोंपर स्मितकी रेखा बनी रही है। भाईका अपमान, और विछोह सदैव रह रहकर उसके जीवनको जलाता रहता है। मालूम नहीं वे कहाँ हैं,—और जीवित भी हैं या नहीं?

पृथ्वी०—उसका भाई? क्या हुआ उसका?

संयो०—उसके भाई कन्नौजमें सेना-नायक थे। पिताजीसे न बननेके कारण उन्हें निर्वासनका दंड दिया गया था। उनका नाम था भीमसिंह।

पृथ्वी०—भीमसिंह? (कुछ सोचकर)—हो, भीमसिंह ही तो पहले कन्नौज राज्यमें सैनिक था।—तुमने क्या कहा?—सेनानायक था?

सयोगिता—हाँ, सेनानायक थे। उनके समान वीर और निडर वहाँ कोई न था।

पृथ्वी०—भीमसिंह अवश्य असामान्य योद्धा है।—हाँ, अवश्य वही भीमसिंह है।—सयोगिते, वह भीमसिंह तो हमारे यहाँ उप-

सेना-नायक है और अब सामन्त अजयसिंहकी मृत्युके पश्चात् वह सेना-नायक बना दिया जायगा।

संयो०—(साश्चर्य) सच ?

पृथ्वी०—हाँ, बिलकुल सच है।

संयो०—(पृथ्वीराजके गलेमे हाथ डालते हुए) आज मै कितनी प्रसन्न हूँ ! आज मेरे जीवनका सबसे शुभ दिन है स्वामी ! भाईके आशीर्वादकी छायाके नीचे हमारा शुभ मिलन हुआ ! अब हमें बहन सुनन्दाको अवश्य बुला लेना है।

[पृथ्वीराज संयोगिताको बाहु पाशमे बद्ध कर लेते हैं।]

तीसरा दृश्य

स्थान—दिल्लीका राजोद्यान

समय—प्रभात

[भीमसिंह और विजय टहल रहे हैं।]

भीम०—विजय, आज दिल्लीश्वरकी अर्धाङ्गिनीने मुझे अपने चरणोंमे उपस्थित होनेकी आज्ञा दी है।

विजय०—हाँ श्रीमन् ! इसका अर्थ यही है कि उनके हृदयमे आपके लिए वही—

भीम०—(हँसकर) तुम्हारे इस भोलेपनके कारण ही तो मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। तुम जितने वीर हो उतने ही सीधे, और जितने पराक्रमी हो उतने ही भोले। सचमुच मै ऐसे ही लोगोको प्यार करता हूँ विजय !

विजय०—धृष्टता क्षमा हो श्रीमन् ! मैंने तो उसका अर्थ यही समझा और अब भी यही समझ रहा हूँ।

भीम०—तुम अर्थ समझनेमें सदैव भूल किया करते हो।

विजय०—तो महारानीका आपको बुलानेसे क्या अभिप्राय है?

भीम०—केवल मनोरंजन! दिल्लीकी राजराजेश्वरी यह देखना चाहती है कि मरे हुए हृदयको लेकर एक मनुष्य कैसे जीवित रहता है?

[दासीका प्रवेश]

दासी—सेनापतिके चरणोंमे दासीका प्रणाम! महारानी आ रही हैं।

(प्रस्थान)

भीम०—अच्छा विजय, तुम उत्तर-द्वारपर मेरी प्रतीक्षा करना।

विजय०—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

[भीमसिंह गम्भीर मुद्रा बनाये हुए टहलते हैं।]

[संयोगिताका प्रवेश]

भीम०—दिल्लीश्वरीके चरणोंमे राज्यके एक क्षुद्र सेवकका प्रणाम!

संयो०—(साश्चर्य) यह क्या कहते हो भाई? मैं तो तुम्हारे लिए वही संयोगिता हूँ जिसके साथ तुम खेला करते थे। यदि तुम अब मुझे इस तरह सम्बोधन करोगे तो मुझे दु:ख होगा। मैं चाहती हूँ कि तुम मुझे संयोगिता ही कहो।

भीम०—महारानी, हमारा सम्बन्ध अब केवल राजा और प्रजाका है। आपको मुझे राज-मर्यादा तोड़नेके लिए लाचार न करना चाहिए।

संयो०—फिर वही बात! हमारा सम्बन्ध क्या केवल राजा और प्रजाका ही है भाई?

भीम०—हाँ, महारानी!

संयो०—ऐसा न कहो भाई, हमारा सम्बन्ध राजा और प्रजाका

नहीं,—हमारा तो वही पुराना सम्बन्ध है । क्या तुम वह सब भूल गये ?

भीम०—हाँ, भूलना ही पडा । मेरे लिए अब वह सब विगत इतिहासका एक दु:खद पृष्ठ है ।

सयो०—यदि पिताजीने तुम्हारे साथ अन्याय किया, तो यह कहाँका न्याय है कि उसका दड तुम मुझे दो ? और यदि मुझे ही दण्ड देनेमे तुम्हे सुख होता हो तो मुझे वह भी स्वीकार होगा: परन्तु मैं भीख माँगती हूँ कि मुझे यह अप्रिय दड न दो !

भीम०—दिल्लीश्वरकी अर्धाङ्गिनीको ऐसी बाते शोभा नहीं देतीं । आप कीर्तिके शिखरपर हैं और मै उस कीर्तिकी रक्षाके लिए केवल एक वैतानिक सैनिक । उस कीर्तिका आदर आप भले ही न करे, परन्तु मुझे तो करना ही पड़ेगा !

सयो०—आखिर यह तो बताओ भाई कि मुझसे ऐसा कौन-सा अपराध बन पड़ा है ?

भीम०—कन्नौजमे असन्तोषकी आग जलाकर आप पूछती हैं कि अपराध क्या हुआ है ? आज देशके असख्य दीपक बुझ गये हैं, असख्य निरीह बालकोंके सिरोंसे छत्र उठ गया है, असख्य नारियाँ विधवा हो गई हैं,—आज सारे भारतवर्षका भविष्य डाँवाडोल हो रहा है । यह सब किसके कारण ?—तुम्हारे कारण । तुमने एक भयकर अपराध किया है । मै जानता हूँ कि इस ससारमे तुम्हें कोई दड न दे सकेगा, परन्तु याद रक्खो हमारे ऊपर [illegible] न्यायालय भी है ।

[पृथ्वीराजका प्रवेश]

पृथ्वी०—भीमसिंह ! (तलवार खींच लेते हैं।)

(सयोगिता दौडकर उनका हाथ पकड लेती है)

सयो०—स्वामी, यह क्या कर रहे हैं आप ?

पृथ्वी०—जीते जी मैं दिल्लीकी महारानीका अपमान कदापि नहीं सह सकता।

संयो०—नहीं, नहीं, आप ऐसा अनर्थ न कीजिए। मैं जानती हूँ कि राज्यमे बहुतसे लोगोंका ऐसा ही विचार है। इसमे भाई भीमसिंहका कोई अपराध नहीं। उन्होंने अच्छा ही किया जो उन विचारोंको हम तक पहुँचा दिया। (भीमसिंहसे) भाई, मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञ हूँ जो तुमने जनताके उन विचारोंसे मुझे परिचित कर दिया। चलिए स्वामी !

पृथ्वी०—नहीं महारानी, इससे मेरे हृदयको शान्ति न मिलेगी।

सयो०—नाथ, मैं आपसे भीख माँगती हूँ, इसका दड आप मुझे दीजिए।

पृथ्वी०—भीमसिंह, मैं तुम्हे केवल निर्वासनका दड देता हूँ। कल सुबह होनेसे पहले तुम मेरे राज्यकी सीमासे बाहर चले जाओ।

भीम०—दिल्लीश्वरने मेरी सेवाओंका यथोचित ही पुरस्कार दिया है। मैं इसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ। महाराज, यह तलवार आपने जिस हाथसे प्रदान की थी, उसी हाथसे वापिस ले लीजिए।

(नगी तलवार पृथ्वीराजके पैरोंपर रख देता है।)

सयो०—नाथ, आप एक सुदृढ स्तम्भको हटाकर सारे राज्यको नष्ट कर रहे है। दूरदर्शितासे काम लीजिए।

भीम०—महारानी, आवेशमे आकर सचमुच ही मैं औचित्यकी

सीमाका उल्लघन कर गया था। मै जाता हूँ महाराज! सोचा था, कन्नौजके अपमानका घाव आपके स्नेह-सिक्त सद्भावोंके प्रलेपसे भर जायगा, परन्तु उसपर उलटा नमक छिड़क दिया गया!

(तेजीसे प्रस्थान)

सयो०—भाई! भाई! (पृथ्वीराजसे) स्वामि, आपने महान् अनर्थ कर डाला! जिसने अपने अतुल पराक्रमसे इस विशाल राज्यको अनेक सकटोसे बचाया है, क्या उसका इसी तरहसे आदर करना चाहिए?—आह! बहिन सुनन्दा, जिसके कारण हमे यह दिन देखनेको मिले है, यह सुनकर क्या कहेगी? क्या उस पवित्रात्माका शाप हम दो अशक्त प्राणियोको नष्ट न कर देगा?—महाराज, जिसमे बनानेकी शक्ति है, वह नष्ट भी कर सकता है। बहिन सुनन्दाने यदि हमारे इस जीवनको बनाया है तो वह नष्ट भी कर सकती है।—स्वामी, मै आपसे क्षमाकी भीख माँगती हूँ। भीमसिंहको क्षमा कर दीजिए! (रोने लगती है।)

पृथ्वी०—महारानी, तुम्हारे आँसुओमे प्रलयकी आगको भी बुझा देनेकी शक्ति है। अच्छा जाओ, मैंने भीमसिंहको क्षमा कर दिया।

चौथा दृश्य

स्थान—सेनापति अजयसिंहका उद्यान

समय—प्रभात

[उर्मिला टहल रही है और धीरे धीरे गा रही है]

सूना मंदिर देव बिना।
देखें नैन तुम्हारी सूरत,
पूजें प्रान तुम्हारी मूरत,

व्याकुल तुम बिन प्रेम-पुजारी,
आओ मन-मंदिर गिरिधारी !
सूना मंदिर देव बिना ।
हृदय-थालमें प्रेम-पुजापा,
चुन चुन सजन ! सजाऊँ,
नैन-ज्योतिसे करूँ आरती
जीवन-भेंट चढ़ाऊँ ।
रोम रोम रट लगी तुम्हारी,
आओ मन-मंदिर गिरिधारी !
सूना मंदिर देव बिना ।

उर्मिला—जब वे आत्म-गौरवसे प्रदीप्त उन विशाल नेत्रोंसे मेरी ओर देखते हैं तो मेरे सारे शरीरमे बिजली-सी दौड़ जाती है । हृदय सिहर उठता है, एक सनसनी,—एक इच्छा जाग्रत हो आती है । जी चाहता है कि उस सौन्दर्यमे अपनेको डुबा दूँ ।—भीमसिंह ! आह, यदि मैं तुम्हे समझा सकती कि मै तुमसे प्रेम करती हूँ,—तुम्हारी प्रेम-शिखामे अपनेको पतंगकी तरह उत्सर्ग कर सकती हूँ ! परन्तु तुम कितने भोले हो ? मेरी चंचल चितवनका, मेरी रहस्यमयी हँसीका, तुम अर्थ ही न समझ सके ! तुम्हारे भोलेपनके कारण तुमपर मेरी श्रद्धा हो चली है और इस श्रद्धाके कारण तुमसे कुछ भय-सा लगने लगा है । परन्तु मै तुमपर श्रद्धा नहीं करना चाहती, क्यों कि वह मुझे तुमसे दूर लिये जा रही है । मैं तो तुम्हारे समीप रहना चाहती हूँ, तुमसे प्रेम करना चाहती हूँ,—तुम्हारा सम्मान नहीं !

[एक सखीका प्रवेश]

सखी—तुमने सुना बहिन ?

उर्मिला—क्या ?

सखी—सामन्तवर भीमसिंह राज्य छोड़कर चले गये !

उर्मिला—(साश्चर्य) भीमसिंह राज्य छोड़कर चले गये ! यह क्या कह रही हो बहन ?

सखी—ठीक कह रही हूँ, भीमसिंह चले गये ।

उर्मिला—कैसे माळूम हुआ ?

सखी—रातके चार पहर बीते होंगे, अचानक मेरी नींद खुल गई । चाँदनी खिली हुई थी । मै बाहर आई तो देखा, बीस-पचीस अश्वारोही सैनिक धीरे धीरे जा रहे है । उनमेसे एकको कहते हुए सुना, 'श्रीमान्, आप क्या हमको छोडकर जा रहे है !' दूसरेने कहा, 'तुम यही रहो विजय, साम्राज्यको तुम्हारी सेवाकी आवश्यकता है।' वह आवाज सेनापति भीमसिंहकी ही थी ।

उर्मिला—परन्तु—

सखी—फिर मैने पहरेदारको सारा हाल माळूम करनेके लिए भेजा । उसने थोड़ी देरमे लौटकर कहा कि सेनापति चले गये ।

उर्मिला—कहाँ गये ?—उसने क्या कहा ?

सखी—यह किसीको नही माळूम ।

उर्मिला—क्यो गये ?

सखी—यह भी किसीको माळूम नहीं । (प्रस्थान)

[दासीका प्रवेश]

दासी—देवी, एक सामन्त आपसे मिलना चाहते हैं । कहते हैं कि मुझे देवीसे एक विशेष काम है ।

उर्मिला—उन्हें सादर ले आओ ।

(दासीका प्रस्थान)

[विजयसिंहका प्रवेश]

विजय०—सेनापति भीमसिंहने यह पत्र आपके लिए दिया है। (पत्र देता है।)

उर्मिला—(पत्र पढ़कर) परन्तु आखिर वे गये क्यों ?

विजय—क्यों कि इस राज्यको अब वीरोंकी कोई आवश्यकता नहीं रही।

उर्मिला—यह क्या कहते हो सामन्तवर !

विजय०—ठीक ही कहता हूँ। दिल्लीपति अब इतने मदान्ध हो गये है कि उचित और अनुचितको देख ही नही सकते।

उर्मिला—क्या आप बतला सकते हैं कि वे कहाँ गये है ?

विजय०—यह तो मै नही जानता। आज मै भी जा रहा हूँ।

उर्मिला—आप भी जा रहे है ? कहाँ ?

विजय०—(उत्तर पश्चिमकी ओर इंगित करते हुए) वहाँ,—देखती हो,—वहाँ जहाँ कि प्रतिहिंसाकी ज्वालाको और भी प्रज्वलित होनेके लिए ईंधन मिले। और देवी, मै तुमसे कहे जाता हूँ कि उसकी प्रचंड लपटोंमें यह महाराज्य, जिसने वीरत्वका अपमान किया है, भस्म हो जायगा। इसका कुछ भी शेष न रहेगा !

(तेजीसे प्रस्थान)

उर्मिला—कंचना !

[कंचनाका प्रवेश]

कंचना—क्या आज्ञा है देवी ?

उर्मिला—तुम्हे मालूम है कि भीमसिंह कहाँ गये ?

कंचना—अभी अभी समाचार मिला है कि वे दक्षिण-पश्चिमकी ओर गये हैं।

उर्मिला—यह भी मालूम हुआ कि वे गये क्यो ?

कचना—यह रहस्य तो अभी किसीको भी मालूम नहीं।

उर्मिला—चलो, महारानीसे मिले

कचना—चलिए देवी !

(दोनोका प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—वन

समय—मध्याह्न

[उर्मिला और कचना एक वृक्षके नीचे विश्राम कर रही हैं]

उर्मिला—इस ससारमे सब कुछ है, फिर भी असख्य मनुष्य अपनी अनेक अतृप्त आकाक्षाओको लिये मृत्युशय्यापर सो जाते हैं, ससारमे इतना अन्न होने पर भी लाखो मनुष्य भूखे रहते है, इतनी धन-राशि होनेपर भी करोड़ो मनुष्य दरिद्र रहते है ! जानती हो कचना, ऐसा क्यो होता है ?

कचना—आप ही बतलाइए।

उर्मिला—क्यो कि उनके प्रारब्धमे वह लिखा ही नहीं रहता। मेरी भी यह सारी ढूँढ-खोज व्यर्थ है। वे मेरे भाग्यमे न थे, इसलिए मुझे न मिल सके। मैने कितनी ही चेष्टा की कि वे मुझे समझ जायँ, परन्तु न समझ सके।—मेरे हृदयके अशान्त कोलाहलको न सुन सके !

कचना—देवी, कभी कभी प्रारब्ध मनुष्यको दुःखमें इसलिए डाल देता है कि वह सुखका मूल्य समझ सके। बिना दुखके अनुभवके सुखका स्वाद ही नहीं आता। वियोगकी वेदनाको जाने बिना सयोग-सुखका मूल्य ही नहीं आँका जा सकता !

उर्मिला—यही आशा तो है जो असत्य मनुष्योंको जीवित रक्खे है। परन्तु कचना, आशा एक मृगतृष्णा ही तो है जो मनुष्यको आजीवन तड़पा तड़पा कर मारती है। अच्छा, तो चले कचना!

कंचना—कहाँ?

उर्मिला—वहाँ जहाँ कि इस मृगतृष्णासे छुटकारा पाया जा सके।

[प्रस्थान]

छठा दृश्य

स्थान—दिल्ली। राजमहलका अन्त पुर

समय—प्रभात

[सयोगिता बैठी हुई है। सुनन्दाका प्रवेश]

सुनन्दा—बहिन, मै आ गई महाराजकी अनुमति लेकर और महारानीका आशीर्वाद लेकर। अब तुम प्रसन्नतासे अपने नवीन जीवनमे प्रवेश करो, अब कोई बाधा नहीं, कोई रुकावट नही। और मैं भी अपना दीन हीन आशीर्वाद लेकर आई हूँ, महारानी।—स्त्री पुरुषके जीवनकी कर्णधार है। अब तुम दिल्लीश्वरकी जीवन-नौकाको साव-धानीसे खेना। ऐसा न हो कि उनका जीवन अकर्मण्य हो जाय। अब सारे भारतवर्षके कल्याण और अकल्याणका उत्तरदायित्व तुम्हारे ही ऊपर है। तुम्हारे ही हाथमे आर्य सभ्यता और संस्कृतिका भविष्य है। सदैव विवेकसे काम लेना।

(सयोगिताकी आँखोंमे आँसू आ जाते हैं)

सुनन्दा—यह क्या बहिन?

सयो०—(अवरुद्ध कण्ठसे) तुमने आनेमे बड़ी देर की बहिन!

सुनन्दा—तो क्या हुआ, आखिर आ तो गई?

संयो०—आह ! यदि तुम पहले आतीं तो सम्भवतः यह अनिष्ट न होता।

सुनन्दा—(आश्चर्यसे) अनिष्ट ?

संयो०—हाँ, यदि उस अनिष्टकी बात सुनोगी तो तुम मुझे कभी क्षमा न कर सकोगी बहिन !

सुनन्दा—यह क्या कहती हो महारानी, मैं तो तुम्हारी एक क्षुद्र सेविका-मात्र हूँ !

संयो०—भाई भीम यहाँ सेनानायक थे, परन्तु छोड़कर चले गये।

सुनन्दा—भीमसिंह यहाँ था ?

संयो०—हाँ।

सुनन्दा—चला क्यों गया ?

संयो०—महाराजसे उनकी कुछ बोल-चाल हो गई।

सुनन्दा—उसके स्वभावमें यह एक बड़ा भारी दोष है। परन्तु, तुम उसे क्षमा तो करवा सकती थी।

संयो०—क्षमा मिल जानेपर भी तो वे चले गये !

सुनन्दा—तो फिर इसमें दुखी होनेकी क्या बात है ? ऐसी साधारण घटनाओंपर तुम्हें ध्यान नहीं देना चाहिए महारानी ! इस समय तुम ही सारे राज्यकी कर्णधार हो। तुम्हारा जीवन, तुम्हारा समय मूल्यवान् है। तुम्हें ऐसी तुच्छ बातोंके सोच-विचारमें अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिए। हमारे देशमें भीमसिंह बहुत हैं, पर दिल्लीश्वर एक ही हैं।

संयो०—तुम्हारा हृदय कितना उदार है ! तुमने तो मुझे क्षमा कर दिया बहिन, पर भाई भीमसिंहके इस तरह चले जानेको मैं कैसे भूलूँ ?

सुनन्दा—बहिन, जान पड़ता है, भीमसिंहने किसी भ्रमके कारण

उत्तेजनावश यह काम कर डाला है। मै उसके भ्रम-निवारणका उपाय करूँगी।—तो अब जाती हूँ बहिन!

संयोगिता—इतनी जल्दी और मुझे छोड़कर?

सुनन्दा—हाँ, क्योंकि अब तक तुम्हे मेरी आवश्यकता थी, तुम्हारे साथ रही। अब भाईको आवश्यकता है, इसलिए मुझे उसके पास जाना चाहिए। जब तुम्हे आवश्यकता होगी, तब फिर आ जाऊँगी। (प्रस्थान)

सातवाँ दृश्य

स्थान—एक ग्राम

समय—रात्रि

[भीमसिंह अकेला]

भीम०—वैभव, कीर्ति, पद,—सब पाकर मैने खो दिये केवल एक स्त्रीके लिए। प्रेम? (हँसकर)—पागलपनका ही तो दूसरा नाम प्रेम है!—हृदयमे वेदना और आँखोमे आँसू लिए हुए मै बढ़ा जा रहा हूँ,—कहाँ? किधर? नहीं जानता।—प्रेमके बदले मिला मुझे तिरस्कार। एक विधवा बहिन है,—मै उसे कितना प्रेम करता हूँ,—परन्तु उसने भी मुझे राजद्रोही कहकर छोड़ दिया।—अब ससारमे मेरा कौन है? (कुछ सोचकर)—ओह, ये सब कायरोकी बाते है। रात हो गई है, आज इसी गाँवमे कही विश्राम करूँ।

[एक ग्रामवासीका प्रवेश]

ग्राम०—तुम्हारा क्या नाम है भाई?

भीम०—नाम जानकर क्या करोगे भाई?

ग्राम०—कहाँसे आ रहे हो?

भीम०—दिल्लीसे।

ग्राम०—आजकलके वहाँके गरमा गरम समाचार क्या हैं?

भीम०—भाई, समाचारोंकी गरमाई और ठंडाई नापनेकी बुद्धि मुझमें नहीं है।

ग्राम०—दिल्लीसे कब चले थे?

भीम०—कई दिन हो गये।

ग्राम०—तुम्हें मालूम है, सेनापति भीमसिंह दिल्ली छोड़कर चले गये?

भीम०—चले गये होंगे।

ग्राम०—वे कोई साधारण आदमी नहीं है भाई! वे एक महान योद्धा हैं। उनका चला जाना क्या कोई साधारण बात है? सारे राज्यमें सनसनी फैली हुई है।

भीम०—अच्छा, वे इतने बड़े आदमी थे? चले क्यों गये?

ग्राम०—दिल्लीश्वरके साथ उनका कुछ कहा-सुनी हो गई।

भीम०—क्यों?

ग्राम०—यह तो किसीको मालूम नहीं, परन्तु इसमें कोई रहस्य अवश्य है। राज्यके दूसरे प्रमुख सामन्त विजयसिंह भी दिल्ली छोड़कर चले गये।

भीम०—(साश्चर्य) विजयसिंह भी चले गये?—कहाँ?

ग्राम०—यह भी किसीको मालूम नहीं। परन्तु उन्हें क्या तुम जानते हो?

भीम०—(कुछ सँभालते हुए) उनके विषयमें मैंने एक बार सुना था। तुम्हें यह सब मालूम कैसे हुआ?

ग्राम०—मैं वहाँ अपने ग्रामके सम्बन्धमें महाराजसे कुछ प्रार्थना करने गया था।

भीम०—और कुछ मालूम हुआ ?

ग्राम०—हाँ, सेनापति अजयसिंहकी पुत्री उर्मिला भी दिल्ली छोड़कर चली गई। उसने महारानीसे कहा कि जिस दिल्लीमे वीरोंका कोई आदर नहीं उसमे मैं कदापि नहीं रह सकती। दिल्लीश्वरने बहुत समझाया पर वह एकसे दो नही हुई। उसने कहा कि सामन्तवर भीमसिंह धूल छानते फिरे और मै दिल्लीमे आरामसे रहूँ, यह कैसे हो सकता है! वह भी राजमहलके वैभवोको ठुकराकर भीमसिहको ढूँढने चली गई। (मुस्कराकर) जानते हो भाई क्यो ? असलियत यह है कि वह भीमसिहसे प्रेम करती है।

भीम०—(एक दीर्घ श्वास खीचकर) अच्छा!

ग्राम०—तो आज रात मेरे मकानपर ही विश्राम करो न भाई?

भीम०—यह भी आपको पता लगा कि उर्मिला कहाँ गई?

ग्राम०—इतना ही सुना है कि उत्तरकी ओर गई है। (सचिन्त देखकर) पर सोचते क्या हो भाई, चलो, मेरा आतिथ्य स्वीकार करो।

भीम०—भाई, मै तुम्हारी इस दयाके लिए धन्यवाद देता हूँ। परन्तु अब मै ठहर नही सकूँगा। वह बेचारी वन-उपवन, जंगल-पहाड़ न जाने कहाँ भटकती होगी। मुझे उसके पास बहुत जल्दी पहुँचना चाहिए। देर होनेसे उसका अनिष्ट हो सकता है।

ग्राम०—तो आप—?

भीम०—हाँ भाई, मै ही भीमसिंह हूँ। (जाना चाहता है।)

[एकाएक गाँवमे कोलाहल सुन पडता है।]

भीम०—यह कैसा कोलाहल मच रहा है? मालूम तो करो भाई, क्या बात है?

[एक और ग्रामवासीका दौडते हुए प्रवेश]

ग्राम०—अरे भाई अनन्त, अनर्थ हो गया। डाकुओने गाँवपर हमला कर दिया है ! अब क्या करे ?

भीम०—(तलवारके कब्जेपर हाथ रखते हुए) अरे भाई, डरो मत ! मेरे मौजूद रहते डाकू तुम्हारा कुछ नही बिगाड सकते। आओ मेरे साथ।

(तीनोका प्रस्थान)

आठवाँ दृश्य

स्थान—गजनीका शाही बाग

समय—सवेरा

[शहाबुद्दीन गौरी और वजीर]

शहा०—हिन्दोस्तानके उन लहलहाते हुए खेतोमे आमोके पेड़ोपर बैठकर कोयल जब अपना मस्ताना राग अलापती है, गुलशनोमें बैठी बुलबुले अपनी चहकसे जब सारी दुनियाको गुलजार करती है, चाँदनी रातमें जब कि मल्लाह गगाकी खुली छातीपर लापरवाहीसे नावे खेते है,—उस समयकी रौनकमे आदमी अपनेको भूल जाता है। वज़ीरे आजम, इन्ही लुभानेवाले नजारोके सबब ही तो मैं हिन्दोस्तानसे मोहब्बत करता हूँ। काश मै ऐसे बहिश्तको फतह कर सकता ! आखिर यहाँ है ही क्या,—खौफनाक पहाड़, वीरान जमीन, भद्दे मकान !

वजीर—जहाँपनाह ! साथ ही साथ उस बहिश्तकी हिफाजत करनेके लिए वहाँके वाशिन्दोमे कितनी गजबकी ताकत है ! पानीपतके मैदानमे उन्होने कितना खौफनाक जग किया ! सचमुच उनका तलवार चलानेका इल्म काबिले तारीफ है।

शहा०—यही तो रुकावट है जो आज मेरी तमाम मुरादोको खाकमे मिला रही है। वजीरे आजम, दिलके ये अरमान कब्रमे भी मुझे चैनकी नीद न सोने देगे।

[एक सिपाहीका प्रवेश]

सिपाही—हिन्दोस्तानका एक जवाँमर्द राजपूत जहाँपनाहकी खिदमतमे हाजिर होना चाहता है।

शहा०—(आश्चर्यमे) राजपूत ?

वजीर—(चौकने हुए) क्या कहा राजपूत ?

सिपाही—जी हाँ, जहाँपनाह !

शहा०—अच्छा उसे पेश करो।

सिपाही—जो हुक्म जहाँपनाह !

शहा०—राजपूत यहाँ क्यो आया ?

वजीर—मै भी ताज्जुब कर रहा हूँ।

[विजयसिंहका प्रवेश]

विजय०—बन्दगी बादशाह सलामत !

शहा०—जवाँमर्द, बतौर मेहमानके तुम्हारा इस्तकबाल करते मुझे खुशी होती है।

विजय०—मै आपको इसी वक्त हिन्दोस्तानपर हमला कर देनेके लिए अर्ज करने आया हूँ।

शहा०—मतलब ?

विजय०—यह कि आप हिन्दोस्तानपर फौरन हमला कर दे।

शहा०—क्यो ?

विजय०—क्योकि हिन्दू कमजोर हो गये हैं।

शहा०—नामुमकिन ! हिन्दुओकी ताकतका खात्मा नहीं हो

सकता। मैने उनकी ताकतका तजुर्बा अच्छी तरहसे तरावड़ीके खौफनाक जगमे किया है। ऐ जवाँमर्द, हालॉ कि मै दिलसे चाहता हूँ कि हिन्दोस्तानपर अपनी फतहका झडा फहराऊँ,—मगर यह नामुमकिन है, यह बिलकुल नही हो सकता। ओफ् राजपूतोंकी तलवार—

विजय०—मगर जहॉपनाह, जिस तलवारसे आपको डर है वह टूट गई है, जिस ताकतसे आप घबड़ाते है वह खत्म हो गई है। मै यही कहनेके लिए तो आपके पास आया हूँ। अब आपका रास्ता साफ है। अब आपसे युद्ध करनेकी ताकत किसीमे नही रही।

शहा०—मगर मेरे दोस्त, तुम यह कह क्या रहे हो?

विजय०—यही कि पृथ्वीराजने अपने उस बेजोड़ सेनापति भीमसिंहको निकाल दिया है जिसके सेनापतित्वमे राजपूतोंने अपने अपूर्व पराक्रमसे अफगान सेनाको हराया था। उनके चले जानेसे आज दिल्ली राज्य आधार-रहित हो गया है, इसलिए उसका फतह होना कठिन नहीं। दिल्लीका राज-सिंहासन अरक्षित है, आप ही जाकर उसपर कब्जा कर सकते है।

वजीर—सिपहसालार भीमसिंहकी जिलावतनी सिपाहियोंको नागवार गुजरी है?

विजय०—जी हॉ।

वजीर—और सुननेमे आया है कि कन्नौजके राजाकी भी पृथ्वीराजसे नाइत्तिफाकी हो गई है।

विजय०—जी हॉ। एक न कुछ स्त्रीके लिए उसने यह बुराई मोल ली है और अपने हजारो वीर योद्धाओंका रक्त बहाया है।

वज़ीर०—तुम उनसे मिले थे ?

विजय—नहीं, परन्तु, यदि आप हिन्दुओंको वचन दें कि आप उनके धर्म और संस्कृतिकी रक्षा करेंगे तो मुझे विश्वास है कि पृथ्वीराजसे असन्तुष्ट अनेक सरदार और राजे-महाराजे आपकी सहायता करेंगे और आपको दिल्लीके सिंहासनपर खुशीसे बैठायेंगे। इतना ही नहीं, मुझे भरोसा है कि सेनापति भीमसिंह भी आपके सहायक होंगे।

वजीर—जहाँपनाह, हिन्दोस्तानपर फतह पानेका यही सबसे अच्छा मौका है!

शहा०—अच्छा, तो जंगके लिए सिपहसालारसे तय्यारी करनेको कह दो।

वजीर—जो हुक्म जहाँपनाह!

शहा०—(विजयसे) मैं वादा करता हूँ बहादुर, कि मैं तुम्हारे मजहब और तुम्हारी तहजीबको न छेड़ूंगा। मुझे तो सिर्फ दौलत और हुकूमत चाहिए, मुझे इन बातोंसे क्या मतलब ?—अच्छा, तुम्हारा क्या नाम है बहादुर ?

विजय०—जहाँपनाह, इस क्षुद्रको विजयसिंह कहते हैं।

शहा०—विजयसिंह, तुमसे मिलकर मुझे निहायत खुशी हासिल हुई। तुम मेरे मेहमान हो। वजीरे आजम, इनको किसी तरहकी तकलीफ न होने पाय।

वजीर—जरा भी नहीं।

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[**स्थान**—एक देहाती घर]

समय—सन्ध्या

[भीमसिंह बैठे हैं। सुनन्दाका प्रवेश]

भीम०—कौन ?—बहिन सुनन्दा ? यहाँ कैसे आ गई ?

सुनन्दा—हाँ भाई, सुनन्दा ही हूँ। खोजते खोजते बड़ी मुश्किलसे तुम्हे पा सकी हूँ।

भीम०—आह बहिन, अतीत गौरवके खँडहरोंपर आँसू बहाते हुए देखनेको, जीवन-संग्राममें हारे हुए भाईको निराशान्धकारमें विकलतासे भटकते हुए देखनेको तुम ठीक समयपर आई बहिन !

सुनन्दा—ऐसा न कहो भाई ! उस अतीत गौरवको समयके अन्धकारमें ही छिपा रहने दो। आओ, अब हम एक नये जीवनका आरंभ करें। नगरोंके कोलाहलपूर्ण वातावरणसे दूर,—बहुत दूर,—प्रकृतिकी शान्त गोदमें कहीं नई सृष्टिकी रचना करें। तुम विवाह करके सुखसे रहो और मैं भगवान्से तुम्हारे लिए प्रार्थना करूँ।

भीम०—विवाह करूँ ? मैं ?

सुनन्दा—हाँ, तुम विवाह करो। मैंने तुम्हारे हृदयकी वेदनाका आभास पा लिया है, और उसका कारण भी समझ लिया है, परन्तु तुमने शुरूसे ही संयोगिताको समझनेमें भूल की है।

भीम०—(साश्चर्य) भूल की है? कैसी भूल?

सुनन्दा—हाँ, भूल। उसके निरपेक्ष निस्स्वार्थ प्रेमको जो एक बहिन अपने भाईपर पूरे हृदयके साथ करती है तुमने कुछ और ही समझ लिया और इसीसे यह भूल हुई।

भीम०—(क्षितिजकी ओर शून्य दृष्टिसे देखते हुए) तब तो बहिन, मुझसे पाप हो गया, बहुत बड़ा पाप! हाय, मुझे कैसा भ्रम हो गया! मैं कितना मूर्ख हूँ!

सुनन्दा—भूल तो भाई, बड़ो बड़ोंसे हो जाया करती है। अब उसके लिए चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं।

भीम०—फिर भी मुझे इसका प्रायश्चित्त तो करना ही चाहिए?

सुनन्दा—एक तो अनजानमे की हुई भूलका कोई प्रायश्चित्त नही होता, और यदि होता भी हो तो उसके लिए पश्चात्ताप ही काफी है जो तुम कर ही रहे हो।

भीम०—(एक ठंडी सांस लेकर) अब मै समझा! परन्तु अब बहुत देर हो चुकी है।

सुनन्दा—जब तक जीवन है तब तक कोई विलम्ब नही भीम! अभी भी कुछ नहीं गया।

भीम०—बहिन!

सुनन्दा—जीवनके विकट मार्गपर चलते चलते अब मै थक गई हूँ भइया! शरीर जर्जर हो गया है, शक्ति नहीं रही। अब विश्राम

चाहती हूँ। और वह तब मिल सकता है जब तुम विवाह करके गृहस्थ बन जाओ। मेरी इस इच्छाको पूर्ण कर दो भाई, इसके बिना मुझे शाति नहीं।

भीम—(एक ठडी साँस लेकर) पर इस भूलने कितना अनर्थ किया ! और कितनी देरके बाद अब मेरी आँखे खुलीं !

सुनन्दा—पर खुल तो गई ? सबेरेका भूला साँझतक घर आ जाय, तो उसे भूला हुआ नहीं कहते भाई !

भीम—तो अब मैं क्या करूँ बहिन ? मा कहा करती थी कि तू सुनन्दाको सदैव कष्ट दिया करता है। मैं माँसे कलह करता और कहा करता कि तू सदा बहिनका पक्ष लेती है। माँ कहती कि तू अपनी बहिनके हृदयको नहीं जानता, परन्तु एक दिन आयगा जब तू उसे पहचानेगा। बहिन, आज वह दिन आ गया। परन्तु कितने विलम्बसे ! (कुछ सोचकर) मॉने मृत्युके कुछ ही क्षण पहले करुण स्वरमें व्यथा-भरी दृष्टिसे देखते हुए कहा था, 'बेटा ! सुनन्दाको तू अपनी माके समान समझना। वह विधवा है, तेरे सिवाय अब उसका कोई नहीं। उसके हृदयको कभी दुखाना नहीं।' परन्तु मैं तो तुम्हे सदैव दुख ही देता रहा। देखूँ, अब तुम्हें सुखी कर सकता हूँ या नहीं।

सुनन्दा—(गद्गद होकर) मेरा सारा दुःख तो भाई, तुम्हारे मिलते ही दूर हो गया। तुम्हें नही मालूम भीम, कितनी तपस्या और कितनी प्रार्थनाके बाद आज मुझे यह सुखका दिन नसीब हुआ है। अब उन बीते हुए दिनोंको याद ही मत करो। अभी दिल्लीमे मैंने स्वर्गीय सेनापति अजयसिंहकी लड़की उर्मिलाके विषयमें

बहुत-सी बातें सुनी हैं । बड़ी ही अच्छी लड़की है, मैंने यह भी सुना कि वह—

भीम०—हाँ बहिन, मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ और अभी अभी सुना कि मेरे निर्वासनके कारण महाराजसे नाराज होकर उसने भी दिल्ली छोड़ दी है । मालूम नही बेचारी किधर भटक रही होगी।

[एक ग्रामवासीका प्रवेश]

ग्राम०—सेनापति, मैं दिल्लीसे एक बड़ी भयकर खबर लाया हूँ ।

भीम०—क्या खबर है भाई ?

ग्राम०—अफगानोंने भारतपर फिरसे आक्रमण कर दिया है ।

भीम०—(साश्चर्य) अफगानोंने ?

सुनन्दा—(विस्मयसे) अफगानोने ? (आकाशकी ओर देखती हुई) —प्रभो, तुम्हारी क्या इच्छा है ? इस प्राचीन देशको क्या तुम कभी शातिसे रहने ही न दोगे ? इस पावन भूमिको क्या पराक्रमी वीरोके रुधिरसे रजित करनेमे ही तुम्हें आनन्द आता है ? (भीमकी ओर करुण दृष्टिसे देखकर) भइया भीम, तो तुम्हारे वीरत्व और पौरुष दिखलानेका समय फिर आ गया । अब फिर तलवार खींचनी होगी।

भीम०—(कुछ सोचकर) बहिन, मेरे प्रारब्धमे सदैव कृतघ्न मनुष्योंकी सेवा करना ही लिखा है । जानती हो, आजतक मुझे सेवाओंका बदला क्या मिला है ? अपमान और तिरस्कार । अब और न जाने क्या क्या लिखा है !

सुनन्दा—सेवा सदैव निष्काम भावसे ही होनी चाहिए भाई ! यही तो भगवान् श्रीकृष्णका अमर सदेश है । तिरस्कार-पुरस्कारका तो हमें विचार ही न करना चाहिए । आत्म-सन्तुष्टि ही इसका सबसे बड़ा पुरस्कार है ।

ग्राम०—मैंने यह भी सुना है कि दिल्लीश्वरने आपका पता लगानेके लिए चारों तरफ अपने आदमी भेजे हैं। इस समय उन्हे आपकी बड़ी आवश्यकता है।

सुनन्दा—तो भाई, अब हमें देर न करनी चाहिए, महाराज हमारी प्रतीक्षामें होंगे।

दूसरा दृश्य

समय—प्रभात

दिल्लीके राजहलका अन्त पुर

[सयोगिता, वीणा और मालती]

सयो०—मालती, तू आरतीकी सामग्री सजा, नीहारिका, तू हिम-कणोंसे प्रक्षालित विकसित पुष्पोकी माला बना, और वीणा, तू तू ऐसे अपूर्व सगीतकी रचना कर जिसकी स्वर-लहरियाँ मेरे भाईके कठोर हृदयमे फिरसे कोमल भावनाओंको जाग्रत कर दें।

वीणा०—आज कितना मनोरम दिन है महारानी! दिनेशकी बाल रश्मियाँ नवजीवन लेकर आई हैं और हरित कुजोंकी अस्फुट कलियोंको अपने सौम्य स्पर्शसे कैसी हर्षोत्फुल्ल कर रही हैं। (ऊपरकी ओर देखती हुई गाती है।)

गीत

सुप्त आशा-उपवनपर आज,
खिला है नव-जीवनका प्रात,
उषा वो आई इठलाती,
हृदयकी कलियाँ चटकाती,
हवा वो आई लहराती,
ओसके मोती बिखराती।
गया युग-युगका अँधियारा,

खिला नवयुगका उजियारा,
हुई सब पूरी मनकी बात,
सुप्त आशा-उपवनपर आज,
खिला है नव-जीवनका प्रात ।

आज महा दिन है!—महा मिलन है! आज प्रारब्ध पुनः दो बिछुड़े हुए भाई-बहिनोको एक सूत्रमे बाँधेगा। पुष्करिणीके वक्ष स्थलपर सलिल-उर्मियाँ नाच उठेगीं, कुजोमे बैठी कोयल कूक उठेगी, मलयानिल पराग-वृष्टि करेगा और मदिरोंमे सुकुमारियाँ मगलाचरण गायेगी।

सयो०—तूने ठीक कहा वीणा, आज महादिन है,—महामिलन है। महाराज उनका सत्कार करनेके लिए स्वय गये है, उनके साथ राज्यके सारे प्रमुख सामन्त है। जिस दिल्लीने उनका अनादर किया था वही आज नत-मस्तक होकर उनका स्वागत करेगी। वीणा, एक न एक दिन पराक्रमी पुरुषकी प्रतिष्ठा होती ही है।

वीणा०—अब हमे कोई भय नहीं, चिन्ता नही। हमारे योद्धा पुनः वही पराक्रम कर दिखायेगे जो अनेक बार दिखा चुके है। अफगान हमारी शक्तिके सन्मुख कदापि न टिक सकेगे। इस बार हमारे योद्धाओका दुर्धर्ष पराक्रम उनकी भारत जीतनेकी लालसाको सदाके लिए नष्ट कर देगा।

[नेपथ्यमे शख घोष होता है]

संयो०—सुन वीणा, मदिरोमे शख-घोष होने लगा। स्वामीकी आज्ञा थी कि जैसे ही भीमसिंह दुर्गके पास पहुँचें वैसे ही मदिरोंमें शख-घोष किया जाय। अब आने ही वाले हैं।—नीहारिका! मालती!

[नीहारिका पुष्पमाला और मालती आरतीका थाल लिये प्रवेश करती है।]

[सुनन्दाका प्रवेश]

सुनन्दा—महारानी!

संयो०—बहिन ! तुम आ गई ? (सुनन्दासे लिपट जाती है ।)

सुनन्दा—हाँ, आ गई बहिन ! इस समय जब कि देशपर महान् संकट उपस्थित है, हमारा भाग्याकाश काले मेघोंसे आच्छन्न है, तब आती कैसे नहीं ?

संयोगिता—मैं भी यही सोच रही थी कि अपनी बहिनके इस संकट-कालमें तुम मेरी सुध जरूर लोगी । मेरा जी न मालूम कैसा हो रहा है । सोचती हूँ, कहीं यह सब प्रपंच नियति मेरे सुख-सौभाग्यको नष्ट करनेके लिए तो नहीं रच रही है ?

सुनन्दा—चिन्ता न करो महारानी, भगवान् सब तरहसे कल्याण ही करेंगे । नियतिका यह प्रपंच केवल इसलिए है कि भारतीय वीरोंकी तलवारें कुंठित न हो जायें, वे अकर्मण्य और कायर न बन जायें । बाहरी आक्रमण ही राज्योंको सतर्क, सावधान और बलवान् बनाते हैं, उनकी शक्तियोंको विकसित करते रहते हैं । नियति किसी एक तुच्छ प्राणीका जीवन नष्ट करनेके लिए इतना बड़ा प्रपंच नहीं रचती ।

[एक दासीका प्रवेश]

दासी—महारानी, सेनापति भीमसिंहजी महाराजके साथ महलमें आ गये हैं, वे आपसे मिलना चाहते हैं ।

संयो०—उन्हें आदरके साथ ले आ ।

[दासीका प्रस्थान]

संयो०—बहिन, उनसे मिलनेके लिए मैं कितनी उत्कंठित हूँ ! पर वे मुझसे बहुत रुष्ट हैं और मुझे इस महान् राज्यके लिए अनर्थ-कारणी मानते हैं । मालूम नहीं, अब भी उनके विचारोंमें कुछ परिवर्तन हुआ है या नहीं ।

सुनन्दा—महारानी, भीमसिंहमें धैर्यकी कमी है । इसी कारण

उसने तुम्हारे विषयमें जल्दी ही अपनी राय कायम कर ली थी। परन्तु अब उसने तुम्हारे निर्मल चरित्रका आभास पा लिया है और अपनी भूलको समझ लिया है। यही कारण है कि इतना अभिमानी होकर भी वह तुमसे मिलने आ रहा है।

सयोगिता—बहिन, उस समय मैंने बहुत चाहा परन्तु उन्हे न समझा सकी कि भले ही मुझसे अनर्थ हुआ हो फिर भी मैं तुम्हारी दयाकी पात्र हूँ।

[भीमसिंहका प्रवेश]

भीम०—नहीं बहिन, दयाकी पात्र तुम नहीं, मै हूँ जिसने तुम्हारे कोमल हृदयको नहीं पहिचाना और उसे चोट देकर चला गया।

सयो०—भाई, आज मै कितनी प्रसन्न हूँ!—मेरा रूठकर गया हुआ भाई फिर मिल गया। मै तुम्हारा स्वागत करती हूँ। (भीमसिंहके ललाटपर तिलक लगाती है, पुष्पमाल पहिनाती है और आरती उतारती है।)

सुनन्दा—भीमसिंह, महारानीको आशीर्वाद दे।

भीम०—जरूर, उस दिन मैं बिना आशीर्वाद दिये ही चला चला गया था जिसका मुझे बहुत ही खेद है।—मेरा हार्दिक आशीर्वाद है बहिन, कि तुम सुखी रहो।

संयो०—भाई, तुम उस दिन मुझसे रुष्ट होकर चले गये थे; परन्तु मैं जानती थी कि तुम मुझसे सदैवके लिए रुष्ट नहीं हो सकते,—एक न एक दिन अवश्य प्रसन्न होगे और मुझे दर्शन दोगे।

भीम०—बहिन, अब उन बीती हुई बातोंको भूल जाओ और मुझे युद्धके लिए बिदाई दो।

सयो०—अभी तो तुम आये ही हो भाई, और अभी ही चले जाओगे, इससे अधिक विडम्बना और क्या हो सकती है?

भीम०—क्या किया जाय बहिन, कर्तव्य जो सिरपर खड़ा है! उसकी तो उपेक्षा की नहीं जा सकती?

सयो०—बचपनमें मैं जब कभी भयभीत हो जाती थी, तब तुम मुझे तत्काल ही अपनी बलिष्ठ भुजाओंमे छुपा लेते थे; मैं अपनेको बिल्कुल सुरक्षित समझती थी। आज भी मैं वैसी ही भयकी स्थितिमें हूँ भाई! (आँसू भरकर) भावी अनर्थसे मै घबड़ा रही हूँ। स्वामी तुम्हारे साथ जा रहे है। मैं तुमसे भीख माँगती हूँ—

भीम०—बहिन, तुम मुझपर वैसा ही विश्वास रक्खो, रण-भूमिमें मेरी तलवार तुम्हारे सौभाग्यकी सदैव रक्षा करेगी।

सयोगिता—भगवानसे प्रार्थना है कि तुम शीघ्र ही विजयी होकर लौटो।

तीसरा दृश्य

स्थान—कन्नौजका राजमहल

समय—दोपहर

[महाराज जयचन्द अकेले बैठे हुए हैं।]

[रानीका प्रवेश]

रानी—सुना है कि सयोगिताका दूत आया है स्वामी?

जय०—हाँ आया है, और मुझे अपने गुप्तचरोंसे भी मालूम हो गया है कि अफगानोंने भारतपर फिर आक्रमण कर दिया है; परन्तु सयोगिताकी बुद्धि तो देखो, वह कन्नौज-राज्यकी सहायता चाहती है!

रानी—सहायता चाहना तो स्वाभाविक ही है।

जय०—पृथ्वीराज मेरा शत्रु है, उसकी सहायता करूँ मैं ? उसने मुझे अपमानित किया, मेरे सम्मानको पददलित किया, फिर भी मै उसकी सहायता करूँ ?—रानी, मैं तो उसका पराजय चाहता हूँ और चाहता हूँ कि उसके हृदयपर कोई ऐसी चोट लगे जो उसे जीवन-भर तड़पाती रहे, शान्तिसे न बैठने दे।

रानी—यह क्या कहते हो स्वामी! उस दिन तो आप उन्हे क्षमा कर चुके है और सयोगिताको आशीर्वाद दे चुके हैं! और फिर, आज तो दिल्लीश्वरने भारतकी स्वतत्रताकी रक्षाके लिए तलवार खींची है, इस समयकी उनकी पराजय तो सारे भारतकी पराजय होगी ?

जय०—नहीं रानी, पृथ्वीराजकी पराजय होनेपर भी मै सारे देशकी पराजय नहीं होने दूँगा। मातृ-भूमिकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए मेरे पास भी विराट् शक्ति है। उसके बलपर अकेले ही अफगानोका सामना कर सकता हूँ।

रानी—तो कीजए स्वामी! आप ही अफगानोंको पराजित कर अपनी कीर्तिको अमर कर जाइए।

जय०—अवश्य करूँगा। परतु तब, जब कि अफगान दिल्लीकी अभिमानिनी शक्तिको कुचल देगे, जब कि वे पृथ्वीराज—

रानी—परन्तु जो शक्ति दिल्लीको मिटा चुकेगी, उसके प्रचड वेगके सम्मुख कन्नौज-राज्य टिका रहेगा ?

जय०—क्यो नहीं! कन्नौज राज्यकी शक्ति साधारण नहीं है।

रानी—स्वामी, पृथ्वराज तो अब एक तरहसे आपके पुत्र है। पुत्रके दोषोंको भी क्या पिता क्षमा नहीं करेगे ? और ऐसे समयमे जब कि उसपर सकट आ रहा हो ?

जय०—रानी, अफगानोके इस आक्रमणमें मैं विधाताका हाथ देख रहा हूँ। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि पृथ्वीराजके दुष्कर्मका दण्ड उसे शीघ्र मिलेगा। हम उसे कैसे बचा सकते है? विधिकी इच्छाको कोई कैसे बदल सकता है रानी?

रानी—स्वामी, आपके पदके योग्य यह बात नहीं है। पृथ्वीराजको आप हृदयसे क्षमा नहीं कर सके है, तभी ऐसा सोच रहे हैं।

जय०—रानी तुम कुछ भी समझो, मैंने जो निश्चय कर लिया है उसे कदापि नही बदलूँगा। मैं उसकी सहायता करने न जाऊँगा। पर हाँ, हमारी सेना कन्नौजकी सीमापर तय्यार रहेगी। रानी, विश्वास रक्खो, पृथ्वीराजका पराजय होनेपर भी मैं भारतकी स्वतन्त्रताको कदापि नष्ट न होने दूँगा। यदि अफगान पृथ्वीराजसे जीत गये, तो मै अवश्य उनसे युद्ध करूँगा।

रानी—मेरा हृदय कॉप रहा है, शीघ्र ही कोई महान् अनर्थ होनेवाला है स्वामी! आर्यावर्त इस समय महा सकटमे है, इसे बचाइए। व्यक्तिगत वैमनस्यको स्मरण करनेका यह समय नहीं है।

जय०—रानी, मेरा निश्चय अटल है।

चौथा दृश्य

स्थान—तरावडीका युद्धक्षेत्र

समय—दो पहर

[लड़ाई हो रही है। भीमसिंह अफगानोंसे युद्ध करते हुए दिखाई देते हैं। उनकी तलवार तेजीसे चल रही है। एकाएक एक अफगानके वारसे वे गिर पड़ते हैं और उसी अवस्थामें उनपर दूसरा वार किया जाता है]

विजय०—(उस वारको अपनी ढालसे रोकते हुए) अरे पामरो, गिरे हुए पर प्रहार करते तुम्हे लज्जा नहीं आती! हट जाओ यहाँसे। (नीचे देखकर) अरे, ये तो सेनापति भीमसिंह हैं।

भीम०—आह, अब दिल्ली नही जा सकता।—क्षमा करना उर्मिला, मैं तुमसे की हुई प्रतिज्ञाका पालन अब नहीं कर सकता।

विजय—(झुककर) सेनापति, मुझे नहीं पहिचाना आपने? मैं हूँ—विजय।

भीम०—विजय?—तुम कहाँ थे अबतक?

विजय०—आपको यहाँ दिल्लीश्वरकी ओरसे लड़ते हुए देख कर मैं क्या बताऊँ कि कहाँ था? मेरी तो बुद्धि काम ही नहीं करती सेनापति!

भीम०—यह क्या कह रहे हो विजय? नहीं तो और किसकी ओरसे लड़ता? देशके इतने बड़े सकटके समय क्या चुप बैठा रहता?

विजय०—श्रीमन्! आपकी दृष्टिमें क्या मान अपमान कोई चीज ही नहीं? जिन्होने आपकी इतनी सेवाओंको भुलाकर अकारण ही आपको निर्वासित कर दिया उन्हींके लिए आप यहाँ रण-क्षेत्रमें जीवन उत्सर्ग करने आये है?

भीम—तो क्या उस अन्यायका बदला चुकानेके लिए स्वर्गसे भी पवित्र जन्म-भूमिका अपमान करता? पर, तुम कहाँ थे अबतक विजय?

विजय०—श्रीमन्, किस मुँहसे कहूँ कि कहाँ था? आपके उस अपमानकी चोटसे मैं अपनी बुद्धि खो बैठा और सीधा गजनी चला गया। अफगानोंको चढ़ा लानेका पाप मैंने ही किया है सेनापति! मातृ-भूमिका अपमान करनेवाला मैं ही हूँ।

भीम—(आश्चर्यसे) यह तुम कर सके? जिस पापका कोई प्रायश्चित्त नहीं वह तुम्हारे द्वारा हो सका? विजय तुमने यह क्या किया? पर अब इन बातोंसे क्या लाभ!

[घबड़ाये हुए वीरसिंहका प्रवेश]

वीर०—अरे ये तो सेनापति है । सेनापति उधर महाराज आहत होकर घोड़ेसे गिर पड़े है और चारो ओरसे अफगानोंद्वारा घिर गये हैं । उनकी रक्षा होना असम्भव है ।

भीम—नहीं, उनकी रक्षा मै करूँगा (तलवार उठाकर खड़े होनेका प्रयत्न करते हैं, परन्तु लड़खड़ा कर गिर पड़ते हैं)—आह, सयोगिते ! अब मै तुम्हारे सौभाग्यकी रक्षा नहीं कर सकता। बहिन, तुम्हारे सौभाग्यके साथ साथ आर्योंका सौभाग्य-सूर्य भी अस्त हुआ जा रहा है। विजय, मेरा भी अन्त अब दूर नही । पर इससे पहले एक क्षणके लिए भी क्यो न हो मुझे उर्मिलासे मिल लेना है ।—आह ! उर्मिला, मैं तुम्हे बहुत देरमें पहिचान सका । विजय तुम—(मूर्छित हो जाते हैं)

विजय०—वीरसिंह, सेनापति मूर्छित हो गये । सामनेवाले वनके उत्तरकी ओर एक छोटा-सा गाँव है । तुम इन्हे वहाँ तक ले जाओ और उनकी सेवा-शुश्रूषाका प्रबन्ध करो । मैं जाता हूँ ।

वीर०—युद्ध तो एक तरहसे समाप्त हो गया । सभी प्रमुख योद्धा काम आ चुके । वीरवर चामुडराय, सामन्तसिंह और धीर पुण्डीर भी मारे गये । अब आप कहाँ जा रहे है ?

विजय०—मेरे जीवनका बड़ा युद्ध तो अब होगा । (कुछ सोचकर) यहाँसे अवकाश मिलते ही अफगान दिल्लीपर आक्रमण कर देंगे ।

वीर०—अवश्य ।

विजय०—दिल्लीमे इस समय कितने सैनिक होंगे ?

वीर०—बहुत थोड़े लगभग पाँच हजार ।

विजय०—काफी है ! (कुछ देर रुककर) मुझे प्रायश्चित्त करना

है, और इससे बढ़कर प्रायश्चित्त क्या हो सकता है कि जिस आदर्शके लिए इतने वीरोंने अपने जीवनोंकी आहुति दे दी, उसीके लिए मैं भी अपना जीवन दे दूँ। भाई, अफगानोंको दिल्लीपर अपनी विजय-पताका फहरानेसे पहले एक दूसरा युद्ध करना होगा। मैं जीते जी उन्हे दिल्लीमे कदापि प्रविष्ट न होने दूँगा। पर अब मुझे जल्दी करना चाहिए और जैसे बने तैसे आज ही वहाँ पहुँच जाना चाहिए।

[भीमसिंह कराहकर ऑखें खोल देते हैं]

विजय०—श्रीमन्! मै जा रहा हूँ।

भीम०—कहाँ?

विजय०—दिल्ली। वहाँ नगर-रक्षक सैनिकोंके बलपर अफगानोंके साथ अन्तिम युद्ध करूँगा और उसीमें प्राण देकर अपने इस पापका प्रायश्चित्त करूँगा। वहाँ पहुँचते ही मै देवीको भी आपसे मिलनेको कहूँगा।

भीम०—उर्मिलाको?—कह देना विजय, उससे तो अवश्य मिलना है। मैंने उर्मिलासे प्रतिज्ञा की थी कि मै तुमसे अवश्य मिलूँगा। परन्तु उसे यह न जताना कि मेरा अवसान समीप है।

विजय०—श्रीमन्! मुझे आशिर्वाद दीजिए कि मैं देशद्रोहका प्रायश्चित्त अपने शरीरका अन्तिम रक्त बिन्दु तक देकर कर सकूँ।

भीम०—जाओ विजय, भगवान तुम्हे अपना कर्तव्य पूर्ण करनेकी शक्ति देंगे।

(विजय भीमसिंहके पैरोंको छूकर तेजीसे चला जाता है)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—अजयसिंहका गृह

समय—सवेरा

[उर्मिला और कचना]

उर्मिला—न जाने आज मेरा जी क्यों बैठा जा रहा है। कही कोई अनर्थ न हो जाय ! पिताजी जब कन्नौजके युद्धमे गये थे उन दिनो भी ऐसी ही उदासी छाई हुई थी—मै ऐसी ही म्लान थी।

कचन—आप अकारण ही शकित हो रही है। आप चिन्ता न कीजिए।

उर्मिला—तरावड़ीके रणक्षेत्रमे इस समय भयकर युद्ध हो रहा होगा।—भगवान ! दिल्लीश्वरको विजयी बनाना, आर्य वीरोंको रक्षा करना। जीवनको घुला घुला कर न जाने कितनी सुकुमारियोंने सुख-स्वप्नोका ससार रचा होगा। आह, आज कितनी उत्सुकतासे वे प्रियतमोकी प्रतीक्षा कर रही होगी ! कहीं उनका वह मनोहर सुख-ससार नष्ट न हो जाय।

कचना—भगवान् इतने निष्ठुर नहीं है देवी !

उर्मिला—हाँ, भगवान् अवश्य निष्ठुर नहीं; नहीं तो मेरी कामना सफल ही क्यो होती ? (कुछ रुककर) कचना ! सेनापतिने मुझे पहिचान लिया—उन्होने मेरे नेत्रोकी मूक वाणीको सुन लिया—परन्तु कितनी लम्बी तपस्याके बाद !

कचना—देवी, हम भी ठीक समय दिल्ली वापिस लौटीं।

उर्मिला—हाँ कचना, यदि जरा-सी भी देर और हो जाती तो

सेनापति न मिल सकते। अपने बड़े बड़े तेजस्वी नेत्रोंसे मेरी ओर देखते हुए उन्होंने कहा,—'उर्मिला! युद्ध समाप्त होनेपर मैं तुम्हारे पास वापिस आऊँगा।' सो वे अवश्य आयेंगे—इस जीवनको सरस बनानेके लिए, मेरे हृदयमें प्रेमका आलोक फैलानेके लिए। मै आँसुओंसे उनके चरण धोऊँगी, गीत-सुमनोंसे उनकी पूजा करूँगी और उनके लिए सगीतके एक ससारका निर्माण करूँगी जहाँ उनकी व्यथित आत्माको शान्ति मिल सके। उनका कितना अनादर किया गया! अकारण ही देशनिर्वासन! उसके स्मरण मात्रसे मेरा हृदय सिहर पड़ता है। उनके हृदयपर बड़ा प्रहार हुआ है, उसका घाव अभी तक नहीं भरा। कचना, ऐसी अवस्थामे उनको मेरी आवश्यकता होगी। परन्तु, न मालूम आज क्यों मेरा हृदय अपने आप ही बैठा जा रहा है!

[विजयका प्रवेश]

विजय०—देवी! मै युद्ध-क्षेत्रसे आ रहा हूँ। तरावड़ीके पासके ही वनके उत्तरकी ओर अमर ग्राम है। वहाँ सेनापति भीमसिंह आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

उर्मिला०—युद्ध समाप्त हो गया?

विजय०—अभी नहीं। पर उनके पास बहुत थोड़ा समय है। आप अभी—इसी समय प्रस्थान कर दीजिए। कहीं ऐसा न हो कि आपके जानेमें देर हो जाय।

(तेजीसे प्रस्थान)

छठा दृश्य

स्थान—अमर ग्राम

समय—सन्ध्या

[भीमसिंह शय्यापर लेटे हुए हैं। वीरसिंह पास ही बैठा है]

भीम०—देखो वीरसिंह, हमारे पास ही एक साम्राज्यकी चिता जल रही है और उसके साथ ही जल रही हैं असख्य वीरोकी अतृप्त आकाक्षायें।

वीर०—श्रीमन्! पर अब ऐसी बातें सोचनेसे क्या लाभ ?

भीम०—हाँ, ठीक कहते हो भाई, सोचनेसे कोई लाभ नहीं है। विश्वके ऊपर अपने शीतल आँचलको फैलाती हुई निशा गगनसे नीचे उतर रही है। क्षितिजपर अपने रहस्यमय आलोकको फैलाये हुए सन्ध्या-सुन्दरी अमृतका प्याला लिये खड़ी है और देव-बालायें मुझे तारकमडलके दूसरी ओर बसे हुए लोकमें ले जानेके लिए आ रही हैं। कही ऐसा न हो कि उर्मिलासे भेंट ही न हो सके! रण-क्षेत्रमें आनेसे पहले वह मुझसे मिली थी परन्तु केवल एक क्षणके लिए। कूचकी आज्ञा हो चुकी थी। उसने धीमे स्वरमें पूछा 'जा रहे हो सेनापति!' मै इतना ही कह सका—'हाँ!' उसकी बड़ी बड़ी आँखोंमेसे उसके हृदयकी पीड़ा झाँक रही थी। उसका कंठ अवरुद्ध था और नेत्रोमें आँसू छलछला रहे थे। फिर उसने इतना ही कहा—'सेनापति, मै तुम्हारी प्रतीक्षामें रहूँगी। विजयी होकर आना।' मैंने कहा, 'मै अवश्य तुम्हारे पास आऊँगा।' इतनेमें ही महाराज वहाँ आ पहुँचे। (कुछ रुककर) मेरी चेतना डूबती जाती है। (कराहकर करवट बदलते हैं।)

भीम०—सामने देखते हो भाई, उस मकानके शिखरपर

आर्य-पताका फहरा रही है। जिसकी कीर्तिकी स्थापनाके लिए स्वय भगवान्‌ने अवतार लेकर लका-काड किया, जिसकी कीर्तिके लिए भगवान् श्रीकृष्णने महाभारतकी सृष्टि की, जिसकी गौरव-वृद्धिके लिए असख्य आर्य वीर रक्तकी धारा बहाते रहे—आह! उस पताकाको हम विदेशियोद्वारा न बचा सके। अपने वीर पूर्वजोंकी धरोहरकी हम रक्षा न कर सके।

वीर०—श्रीमन्! आप व्यर्थ व्यग्र हो रहे हैं। अच्छे होनेके लिए चित्तका स्वास्थ्य आवश्यक है।

भीम०—(एक दीर्घ नि श्वास खींचकर) अपनी कीर्तिके अवसानमे भी वह पताका कितने गौरवसे फहरा रही है! दिनेशकी अन्तिम रश्मियाँ उस पर नाच रही है, कुछ ही देरके पश्चात् अन्धकार उसे अपने अचलमें छिपा लेगा। तब फिर—फिर इसके लिए कभी प्रभात भी होगा?

वीर०—क्यो नही श्रीमन्! रात्रिके बाद प्रभात तो होता ही है।

(नेपथ्यमे रथके पहियोंकी आवाज होती है। वीरसिंह खिडकीके पास जाता है)

वीर०—श्रीमन्! देवी आ रही है। मैने पहिचान लिया, वह उन्हीका रथ है।

भीम०—किसका? उर्मिलाका? वह ठीक समयपर आई, उसने आनेमें देर नहीं कीं। उर्मिला मुझे इतना अधिक चाहती है, यह मैं बहुत विलम्बसे जान सका।

[उर्मिलाका प्रवेश]

उर्मिला—सेनापति! (घबराकर) यह क्या!—आप तो आहत होकर पड़े हैं!

भीम—उर्मिला! मै तुम्हारी प्रतीक्षामें ही था। आओ, मेरे

समीप आओ। मैंने कहा था, मैं तुम्हारे पास आऊँगा परन्तु तुम मेरे पास आईं! विधाताकी लीला कितनी विचित्र है!

(उर्मिला शय्याके समीप पहुँच जाती है)

भीम०—उर्मिला, मैंने कोयलके प्रेम-सदेशको तब समझा जब कि वसन्त बीतने ही वाला था। बैठ जाओ उर्मिला! मेरे सरको अपनी गोदमे ले लो।

(उर्मिला भीमसिंहके सिरको गोदमें लेकर शय्यापर बैठ जाती है)

भीम०—(उर्मिलाके हाथको अपने हाथमे लेते हुए) मेरा जानेका समय आ गया उर्मिला! मुझे—

उर्मिला—इस महा-मिलनके समय ऐसा न कहिए देव!

[भीमसिंह आँखे मूँद लेते हैं]

उर्मिला—सेनापति!

[भीमसिंह आँखे खोलता है]

भीम०—दिन-भरके परिश्रमके पश्चात् पक्षी अपने अपने नीड़ोंमें विश्राम लेनेके लिए वापिस आ गये। मैं भी जीवनके बीहड़ मार्गपर भटकते भटकते अन्तको तुम्हारी गोदमें अनन्त विश्राम लेनेके लिए वापिस आ गया। उर्मिला, मैं तुम्हारा था और अन्तको तुम्हारे पास वापिस आ गया।

उर्मिला—हाँ देव! आप मेरे थे और मेरे पास वापिस आ गये।

भीम०—आह, यदि विजयी होकर वापिस आता! नहीं,—नहीं, इस महामिलनके समय मैं उस भयानक सत्यकी याद न करूँगा। इस समय तो मैं तुम्हारे विशाल व्यक्तित्वमे अपने इस छोटे-से जीवनको शान्तिसे खो देना चाहता हूँ। जीवनमें मैं सदा तूफ़ानके साथ खेलता रहा, कभी भी शान्तिसे नहीं बैठा। आज,—जीवनकी इस गोधूलिमें—मुझे शान्ति मिली है। मैं—(बेचैनीसे करवट बदलते हैं।)

उर्मिला—सेनापति ! (भीमसिंह आँखें मूँद लेते)

उर्मिला—(अवरुद्ध कंठसे) देव !

[भीमसिंह नेत्र खोलनेका प्रयास करते हैं]

भीम०—समय हो चुका उर्मिला, मुझे अब जाना है।

उर्मिला—(रोती हुई) देव, मुझे छोड़कर न जाओ। नहीं, नहीं मैं तुम्हे कदापि न जाने दूँगी। अभी अभी तो तुम मेरे पास आये, और अभी कैसे चले जाओगे ? तुम मेरे हो, सदा मेरे पास रहोगे देव !

भीम०—उर्मिला !—उर्मिला ! तुम कहाँ हो ? मुझे अपना हाथ दो।—आह, मेरी अभागी बहिन सुनन्दा !—आह, संयोगिते !—उर्मिला ! मैं—

उर्मिला—(रोकर) मेरे देव ! आखिर तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गये ? [सुनन्दाका प्रवेश]

सुनन्दा—(अवरुद्ध कंठसे) चले गये अमर-भूमिमे। पर उर्मिला यह वियोग थोड़े ही समयका है। हम भी शीघ्र वहाँ पहुँच जायेंगी, चिता-रथपर बैठ कर। (भीमके मृत शरीरके पास जाकर)—आह रे मनुष्य ! तेरा यही जीवन है—तृष्णाओंके पीछे अशान्तिकी विकट मरुभूमिमे भटकना और फिर जीवनकी गोधूलिमे अतृप्त आकांक्षाओंको हृदयमे समेटे अनन्त निद्रामे सो जाना !—भाई ! तृष्णाओंकी इस ताडवस्थली—मर्त्यभूमिमे तुम्हे कभी शान्ति न मिली। परन्तु भीम ! अब तो तुम स्वर्ग-भूमिमे चले गये जहाँ हृदयको विकल कर देनेवाली वासनायें नहीं, जीवनको अन्दोलित कर देनेवाली इच्छाये नहीं, प्राणोंको व्याकुल बना देनेवाली ममतायें नहीं। वहाँ तुम्हे शान्ति मिलेगी भाई ! अनन्त शान्ति ! !

समाप्त